TEXT DARK WITHIN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182064
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H [illegible] Accession No. [illegible]

Author [illegible]

Title [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below.

कला के लिए

लेखक

भार्गवराम विट्ठल वरेरकर

अनुवादक

र० श० केलकर, एम० ए०

१९५७

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली-६

प्रकाशक

रामलाल पुरी

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

Checked 1965

Checked 1969

लेखक के अन्य नाटक

अ-पूर्व बंगाल	सिंहापुर से
भूमि कन्या सीता	सारस्वत
कला के लिए	यही वर का बाप
	सन्यासी का संसार
प्रेस में	मजदूरों का राज
द्वारकाधीश	शिवा-शिवा
दासता के अधिकारी	प्रलय का लय
स्वयं-सेवक	कोरी करामात

मुद्रक

श्यामकुमार गर्ग

हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस

क्वीन्स रोड, दिल्ली

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

मूल्य १।)

भूमिका

सामाजिक जीवन की अनेक धाराओं पर कई नाटककारों ने अनेक वार प्रहार किए, प्रकाश डाला, तरफदारी की या प्रवाह में बह गए पर चित्रकला को जो सामाजिक जीवन की महत्त्वपूर्ण धारा है, अभी तक किसी ने नही छूआ था। मेरी हार्दिक इच्छा थी कि कोई मँजा हुआ नाटककार इस विषय को लेकर कला एवं समाज पर सीधा प्रकाश डाले। मेरी इस कई वर्ष पुरानी इच्छा को सौभाग्य से स्वाभिमानी सुप्रसिद्ध नाटककार श्री मामा वरेरकर ने अपनी निजी प्रेरणा से 'कला के लिए' नाटक लिखकर पूरा किया जिसके लिए उन्हे धन्यवाद देना मै अपना प्रथम कर्त्तव्य समझता हूँ।

इस व्यापारी ससार मे कलाकार की कला और उसके जीवन का जो मारवाड़ी सौदा हो रहा है उससे समाज परिचित नहीं। इतना ही नही, कलाकार भी थोडे ही परिचित है। श्रेष्ठ और स्वतत्र कलाकृति के निर्माण के लिए कलाकार सर्वथा असमर्थ होने के कारण अपात्र साबित हुआ है। कलाकृति का मूल्य बाजार मे क्या होगा इस अंतर्निहित हेतु के परे कलाकार का मन और हाथ नही पहुँचता, कारण एक ही है— प्रत्येक व्यक्ति दुनियादार बनकर रहना चाहता है; सामान्य जनता के सामाजिक बधनो द्वारा ठहरायी हुई प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता है। कलाकार की पृष्ठिभूमि, स्वभाव तथा ध्येय परे रखकर, कृत्रिम जीवन के फेरे में पड़कर, केवल उदरपालन के परे वह नही जा सकता। और इस तरह वह स्वयं व्यापारी दुनिया की एक इकाई बन जाता है। सच्चा कलाकार समाज का पथप्रदर्शक होता है। समाज उसका पथप्रदर्शक नही बन सकता, इस सत्य को मामासाहब ने सुन्दरराव के चरित्र द्वारा स्पष्ट किया है।

सुन्दरराव के चित्र प्रदर्शन—समिति ने ठुकरा दिए—ऐसी घटनाओं

से कलाकार भली भाँति परिचित हैं। सच्ची कला संस्थाओं की प्रदर्शनियाँ व्यापारी कला के लिए नही होनी चाहिए। व्यापारियों ने आयोजित की हुई प्रदर्शनियो में व्यापारी कला का समावेश योग्य है पर उच्च कला की विशेषताएँ व्यक्त करने में कौन सा कलाकार श्रेष्ठ है यह बात जनता की नजरों के सामने लाना कला-सस्थाओ का कर्त्तव्य होना चाहिए। पर दुर्भाग्य से कला सस्थाओं एवं कलाकारो की व्यापारी प्रवृत्ति दिन पर दिन दृढ़तर होने के कारण ऐसी जगह श्रेष्ठ कला दबोची जाने की सम्भावना हो सकती है। सुन्दरराव मदा से कहता है, 'मेरे यहाँ तुम सीखने न आओ। सरकारी कला मदिर में जाओ'। तब मंदा कहती है, 'कला मंदिर में जाकर मुझे ड्राइग मास्टर नही बनना है।' उस लडकी का यह उत्तर अत्यत समुचित है। आज की सच्ची वस्तुस्थिति भी यही है। सरकारी कला मदिरों में कलाकार बनने योग्य शिक्षा मिल ही नहीं सकती। सरकारी कला शिक्षक संस्था तो इस समय पूर्णरूप से व्यापारी कला का शिकार बनी हुई है। रोजी कमाने वाले कलाकार बनाने का वह एक कारखाना मात्र बन गई है। उच्च कला, राष्ट्रीय भावना एव स्वतत्र विचारों का गला घोटने का वहाँ जान-बूझकर प्रयत्न किया जा रहा है। इसका कारण एक ही है—सरकार उस सस्था को भारतीय कलाकारों के नियंत्रण मे नही जाने देती। विदेशियों की देखरेख में दी जाने वाली शिक्षा गुलामी-वृत्ति के कलाकार पैदा करने के अतिरिक्त और कुछ भी नही कर सकती। यह बात मदा के "ड्राइंग मास्टर नही बनना है मुझे!" एक ही उत्तर ने स्पष्ट कर दी है।

स्त्री और पुरुष का भेद-भाव किस प्रकार मनुष्यता के रास्ते में आता है यह बात रजनी से कहलवा कर मामासाहब ने सुन्दरराव की बड़ी अच्छी तरह से आँखे खोली है। आँखें खुलते ही 'आदि मानव' की कल्पना सुन्दरराव के मस्तिष्क में आई और तब उसने सींग दाढ़ी मूछ स्तन और पूँछ वाले आदमी का निर्माण किया। 'मनुष्य' सज्ञा के पात्र मनुष्य के मुख्य गुण एकत्र करके उसे प्रतीकात्मक आकार देकर सुन्दर-

राव ने जो चित्र बनाया वह ऊँची कला का द्योतक सिद्ध होता है। प्रतीकात्मक पद्धति हमारी भारतीय कला की विशेषता है। हम कलाकारों को पाश्चात्य कला शिक्षा के कारण आँखो को दिखलाई देने वाले विसर्ग का अनुकरण करने के अतिरिक्त कुछ नही दिखाई देता। हम कलाकारों का बौद्धिक सामर्थ्य नष्ट कर दिया गया है। और इसीलिए सुन्दरराव का 'मनुष्य' उच्च कला मे से एक है यह बात बहुत ही थोड़े कलाकारों को जँचेगी। साधारण जनता तो उसे पागलपन ही समझेगी। इसमें संदेह नहीं कि ऐसी घटनाएँ रंगभूमि द्वारा जितनी अधिक तादाद में जनता के सामने आएं उतनी लोक शिक्षा में मदद होगी।

कला के सच्चे संसार को छोड़कर समाज मान्य संसार स्वीकारना कलाकार के लिए दो पत्नियों का पति बनने की भाँति है। कलाकार अपनी कला के साथ जन्म से ही विवाहित रहता है। इसके उपरान्त समाज में विश्वास एवं नाम-ख्याति पाने के लिए विवाह करके दुनियादार की भाँति घर बसाना अपने आप को उच्च कला निर्माण के लिए नालायक बना लेना है। 'कला के लिए' नाटक में इस सत्य पर प्रकाश डाला गया है। कला को एकमात्र पत्नी और कला कृति को परिवार समझकर जो कलाकार अपने आप को समर्पण कर दे वही सच्ची कला का निर्माण कर सकता है। ऐसे कलाकार जब आगे आएँगे तभी कला के विकास की आशा की जा सकती है। मेरे कहने का अभिप्राय यह नही कि इस प्रकार दो पत्नियों के स्वामित्व के कारण उच्च कला कृति का निर्माण एकदम असम्भव है, पर वह कठिन अवश्य है। ऐसा कलाकार सौ में एक भी मिल सकेगा इसमें सन्देह है। यदि कोई बिरला हुआ भी तो उसके जीवन का आठवाँ हिस्सा भी कला के हिस्से नही पड़ता। कलाकार कोई साधारण व्यक्ति नही होता। अतः असाधारण व्यक्ति की तुलना सधारण के जीवन से नहीं की जा सकती।

हमारी गुलामी की प्रवृत्ति इतनी अधिक बढ़ गई है कि कोई भी कलाकार अपनी कला की महत्ता समाज को समझाते समय किसी रही

युरोपियन के सर्टिफिकेट का अथवा सिफारिश का रस भरा वर्णन किए बिना, उसे नहीं समझता। यही बात समाज को भी लागू है। यह जानने के लिए कि कोई कलाकार छोटा है या बड़ा है युरोपियनों की सलाह लिऐ बिना समाज का भी समाधान नही होता। लोग कलाकार की दाद तभी देगे यदि कलाकार युरोप हो आया हो और दो-चार समाचार-पत्रों में उस के बारे में कुछ पंक्तियाँ उन्होने पढी हों। विदेशी उपाधि तो कलाकार का बहुमूल्य हथियार बन गई है। और समाज कलाकार की उपाधि को ही उस की कला समझता है। प्रसंगानुसार F. R. S. A. की उपाधि के सम्बन्ध में जनता और कलाकार मे कितनी गलतफहमी फैली हुई है उस बात को प्रसंगानुसार इस नाटक मे भलीभाँति दिखाया गया है। रॉयल सोसायटी ऑफ आर्टस (**लंदन**) के बारे मे अभी भी कई कलाकरों को गलतफहमी है। कई भोले कलाकार उस सोसायटी का फेलो बनना बड़े सम्मान की बात समझते है। पर सच बात तो यह है कि जितना आसान और सम्मानपूर्ण बाम्बे आर्ट सोसायटी तथा आर्ट सोसायटी ऑफ इंडिया संस्थाओं का सदस्य बनना है उससे अधिक रॉयल सोसायटी ऑफ आर्ट का सदस्य बनना नही। कल यदि बाम्बे आर्ट सोसायटी एम० बी०एस० की उपाधि या आर्ट सोसायटी ऑफ इंडिया एम० ए०एस०आई की उपाधि २५ रु०फीस लेकर देने लगे तो ये एफ० आर० ए०एस०के शौकीन फीस देने के लिए तैयार भी होंगे या नही इस में सदेह है। तीन गिन्नियाँ, मुतवातिर प्रयत्न करके, वहाँ देगे पर २५ रु० प्रार्थना करने पर भी यहाँ नही देगे। हमारी इसी दुर्बल प्रवृत्ति पर "कृष्णा डेमा रामगडा फेलो ऑफ रॉयल सोसायटी ऑफ आर्टस" नामक नौकर पात्र द्वारा अच्छी तरह प्रकाश डाला गया है।

मामासाहब के 'कला के लिए' नाटक का सार है कि जन्मजात कलाकार गुलामी, परंपरा, अनुकरण, प्रतिष्ठा तथा कृत्रिम प्रेमपाश आदि रोगों से सर्वथा मुक्त रहता है और अपनी स्वतंत्र कला पर अपना सारा जीवन लगा देता है। नाटक का कथानक यथार्थवादी होने के कारण

मुझे विश्वास है कि विचारशील कलाकार का उससे समाधान होगा।

मामा साहब ने कला का सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक अध्ययन अच्छा किया है यह बात इस नाटक में सिद्ध होती है। कला के क्षेत्र मे नाटककार के नाते मामा ने जो अपनी हाजिरी लगाई है उसके लिए मैं मामा का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ।

बम्बई—ताडदेव **वि० पां० करमरकर**

कृपया ठीक करले

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७	२४	ने है	ने कहा है
१७	२६	य ।दन	ये दिन
१९	११	नहीं...जलता	नही जलता...
२७	१	स्डटै	स्टैंड

प्रस्तावना

यह नाटक अगस्त, १९३९ में लिखा गया है। इस नाटक का अभिनय होना था। आर्ट सोसायटी ऑफ इन्डिया के लिए तथा उसीकी ओर से होना था। उस समय बम्बई के प्रमुख आर्टिस्ट स्त्री-पुरुष इस नाटक का अभिनय करने वाले थे तथा श्री आलतेकर जी की देखरेख में चित्रकार हलदणकर के स्टूडियो में इसकी रिहर्सल भी आरम्भ हो गई थी। पर समय अनुकूल न होने के कारण उस समय यह नाटक रंगभूमि पर न आ सका तथापि यह नाटक लिखा जाने का पूरा श्रेय आर्ट सोसायटी के प्रमुख सदस्य श्री नानासाहब करमरकर तथा तात्यासाहब डोंगरे को है।

तीन साल पश्चात् आज इस नाटक का प्रयोग रगमंच पर हो रहा है तथा प्रयोग द्वारा 'लिट्ल् थिएटर' संस्था का प्रथमोद्घाटन हो रहा है जिसका श्रेय नेशनल थिएटर अकादमी के रजिस्ट्रार पार्श्वनाथ आलतेकर तथा उनके विद्यार्थियों एवं विद्यार्थिनियों को ही है।

हाजीकासम वाडी,
बम्बई।
ता० ३ सेप्टेंबर १९४२

भा० वि० वरेरकर

पात्र-परिचय

पुरुष पात्र

सुन्दर	:	कलाकार
बाबूराव	:	रजनी का पति
बलवन्तराव	:	रमणी का पति
विश्वासराव	:	पुराने जमाने का कलाकार
कृष्णा	:	सुन्दर का नौकर
कवि		
ऑथर		
नट		

स्त्री पात्र

कल्याणी	: सुन्दर की प्रेयसी
रमणी	: सुन्दर की बहन तथा बलवन्तराव की पत्नी
रजनी	: सुन्दर की शिष्या तथा बाबूराव की पत्नी
कुंदा मंदा	: सुन्दर की शिष्याएँ

कला के लिए

पहला अंक

[सुन्दरराव का स्टूडियो...सर्वसामान्य किसी भी आर्टिस्ट के स्टूडियो की भाँति...जगह-जगह पर पूर्ण-अपूर्ण चित्र लटके हुए हैं अथवा स्टेंड पर रक्खे है...विद्यार्थियों के बैठने के लिये, 'डान्की, चौकियाँ... कहीं-कहीं कुर्सियाँ अस्तव्यस्त ढंग से रक्खी हुई है...एक कोच, स्टूल... जमीन पर कागज के टुकड़े तथा कागज के गोले पड़े हुए...एक कोने में एक रेडियो सेट है। परदा उठते समय वहाँ कोई नहीं है। रेडियो बज रहा है। क्षण भर में रजनी प्रवेश करती है। रजनी सुन्दरराव की एक विद्यार्थिनी है। उसका लिवास आजकल की किसी भी विद्यार्थिनी की भाँति है पर उसमें बनाव शृंगार नहीं है...मुखाकृति गंभीर है...असमय प्रौढ़ता पाई हुई एक प्रौढ़ लड़की...इधर-उधर दरवाजों में झाँकती है और 'कृष्णा-कृष्णा' कह कर पुकारती है। किसी से उत्तर न पाकर 'शायद घर में कोई भी नहीं है', (स्वगत) बड़बड़ाती हुई रेडियो के पास रेडियो सुनती खड़ी रहती है। तभी रमणी प्रवेश करती है और चौंक कर दरवाजे के पास ठहर जाती है...रमणी सुन्दरराव की बहिन है। लिवास किसी भी खानदानी गृहणी के समान है ...बातचीत में इतराई हुई... आयु में अधिक दिखाई देती हुई भी लड़कपन से युक्त एक आधुनिक गृहिणी......।]

रमणी—कौन ! रजनी ? आज इधर कहाँ ?

रजनी—देखने आई थी...।

रमणी—किसे ? अब तो तुम्हें किसी को देखने की आवश्यकता नहीं !

रजनी—नहीं, जिन्होंने पहले पहल मुझे देखा, उन्ही को देखने आई थी । कहा था सुन्दरराव के यहाँ जा रहा हूँ... ।

रमणी—किसने ? बाबूराव ने ?

रजनी—हाँ । सोचा आज उन्हें यह उमग कैसे आई ? सुन्दरराव के नाम से जो आग-बबूला हो उठते थे उनमें सुन्दरराव के प्रति इतनी प्रेमार्द्रता कैसे उमड़ आई यही देखने मै यहाँ आई थी । पर यहाँ कोई हो भी ?

रमणी—मुझे लगता है दादा अभी आ जायगा, शायद प्रदर्शनी में गया है । आज चुनाव होना है न चित्रों का !

रजनी—शायद सिफारिश लड़ाने गए हैं ?

रमणी—दादा और शिफारिश ? ऐसा न कहो । प्राण जाने पर भी वह किसी के सामने हाथ नहीं फैलायेगा ।

रजनी—चुनाव क्या हुआ है देखने गए होंगे...वैसे मुझे ठीक-ठीक पता नहीं । मैंने केवल अन्दाज से कहा है ।...कुछ समझ में नहीं आता आजकल उन्हें हो क्या गया है । कल्याणी से भी वे आजकल नही मिलते ।

रमणी—वही कह रही होगी शायद ?...उसकी क्या सुनती हो ? अमीर की बेटी है ! स्वयं ही भटकती रहती होगी कहीं और कहती होगी वह नहीं मिलता । मुझे विश्वास नहीं होता । सुन्दरराव और कल्याणी को न मिले !

रजनी—अच्छा...और शायद बलवन्तराव प्रदर्शनी में नहीं गए हैं ? चित्र भेजे हैं न ?

रमणी—ऊँह ! उन्हें उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं । जो पुरस्कार और पदक मिलने चाहिए थे, उन्होंने प्राप्त कर लिए है । अब तो अपने चित्र भेजने होते हैं इस लिए भेजते है...बस । पर हाँ...तुमने कितने चित्र भेजे है ?

रजनी—ऊँह...मेरा क्या...स्त्रियों के चित्रों को कौन महत्त्व देता है ?...

रमणी—पुरुषों से पूछो। वे कहते हैं आजकल तुम औरतें आड़ी आती हो उनके पुरस्कारों में ! चित्र खराब होने पर भी उसे बनाने वाली सुन्दर होनी चाहिए...पुरस्कार निश्चित है !

रजनी—बड़ी दुष्ट हो तुम ! उनसे कहो चित्रकार बनने के लिए अभी तुम लोगों को काफी समय लगेगा।

रमणी—तो...कितने चित्र भेजे हैं तुमने ?

रजनी—बहुत सारे भेजे हैं...पर देखना है उनमें से लगाते कितने हैं।...वैसे मुझे इसकी परवाह नही पर इनका प्राण छटपटाता रहता है न ? समझते हैं जैसे उन्ही का चित्र है...ऐसे ही यदि कोई मेरे चित्र को बुरा कह दे तो झगड़ पड़ते हैं...।

रमणी—भाग्यवान हो !

रजनी—कैसा भाग्य ले बैठी हो ? जो वे मेरी तारीफ करते हैं तुम समझती हो वह मेरे लिए करते है ? अरी मैं सुनती हूँ...किसी दूसरे से कहते रहते हैं जैसे उन्हीं की कल्पनाएँ हों। जैसे मैं केवल चितेरी हूँ। मेरा हाथ अपने हाथ में पकड़ कर चित्र निकलवाता हूँ ऐसा नहीं कहते, यही मेरा भाग्य है।

रमणी—सच ?

रजनी—आज प्रथम बार दौड़े गए हैं उस हेंगिंग कमेटी के पास। मैंने कितना कहा कि न जाओ...लेकिन नहीं...दूसरों के सामने नाक रगड़ने की आदत है न उन्हें ? न मिले पुरस्कार और पदक—क्या चाटना है उन पदकों को ? और पुरस्कार क्या है ? छः सौ रुपये। हं: ! भिखमंगे कहीं के !

रमणी—तुम समझती हो घर में विपुलता है ! पर कितने लोगों की आँखें लगी होती हैं इन छः सौ पर। जन्म भर का इन्तजाम हुआ सा लगता है उन्हें।

रजनी—ठीक है...पर मैं कहती हूँ इनको क्या गरज है इस झमेले से?

रमणी—पुरुष का जी—छटपटाता है न पत्नी के कल्याण के लिए ? हम स्त्रियाँ वह नही समझ सकती—(**विश्वासराव आता है । पुराने जमाने का एक आर्टिस्ट—आयु लगभग ५५ साल—पगड़ी बाँधने वाला—उपरना डाले हुए—बात करते समय कन्धे उचकाने की आदत... हाथ में हमेशा एक छाता...**) आइए विश्वासराव, दादा कहाँ हैं ?

विश्वास—सुन्दर न ? दिखाई नही दिया वहाँ...अच्छा हुआ वह नहीं गया ।

रजनी—क्यों ? क्या हुआ ?

विश्वास—और क्या होता ? गत वर्ष की पुनरावृत्ति !

रमणी—क्या उनके सारे चित्र निकाल फेंके ?

विश्वास—हठ है यह...हठ ! जवानी का खून...खौलता है । लगता है कि मैं संसार में उथल-पुथल कर दूँगा । ऊं, हुं ! हमारी कौन सुनता है ? बुड्ढे लोग हम...नौजवान समझते हैं कि हम मंदबुद्धि हो गए हैं । नहीं ऊं, हुं !

रजनी—क्या हुआ ? वृद्धों ने क्या गुनाह किया ?

विश्वास—वृद्धों ने नहीं...नवयुवकों ने । क्या हैं वे चित्र ! कभी देखे थे किसी ने ऐसे चित्र ! अरे क्या ससार में कही सौन्दर्य है ही नही ! घूरा क्यों टटोलते हैं ये छोकरे ? लोग क्या मूर्ख हैं घूरा देखने के लिए ?

रमणी—हुआ क्या, साफ-साफ बतायेंगे ? क्षमा कीजिएगा...मेरी बहन का हृदय छटपटा रहा है इसलिये पूछा । क्या हुआ ?

विश्वास—होना क्या था ? फेंक दिए चित्र ।

रमणी—दादा के चित्र ? एक भी न चुना ?

विश्वास—एक भी अच्छा न था...फिर भला कोई कैसे चुनता ?

रजनी—और मेरे ?

विश्वास—सब पास ! सर्वसम्मति से ! (**रमणी से**) अपने दादा से कहो इससे बुद्धि लो । मैं कहता हूँ शाबास बाबूराव ।

रजनी—(**रमणी से**) सुन लो।

विश्वास—क्या ?

रजनी—नहीं मैंने कहा सुन्दरराव का कोई पति होता तो ऐसा न हुआ होता।

विश्वास—पति या पत्नी ?

रमणी—पत्नी विचारी क्या करती ! गूंगा जानवर। दिए दान की और दिए अन्न की मालकिन।

विश्वास—पर मालकिन तो है न ?

रजनी—मालिक की पत्नी होने के नाते। अब यह रमणी है...चित्रकार की पत्नी—क्या इसलिए यह चित्रकार कहलाएगी ?

विश्वास—तुम स्त्रियाँ बड़ी असन्तुष्ट होती हो। किसी भी तरह तुम को संतोष नहीं होता। स्वतंत्र छोड़ दी जाओ तो कहती हो कि हमारी कोई चिन्ता नहीं करता...और तनिक भी अधिकार जताया जाय तो आफत मचा देती हो। लेकिन तुम्हारा ठीक है रजनी...बाबूराव सा पति पाने के लिए भाग्य चाहिए।

रजनी—सुन लो रमणी।

विश्वास—क्यों ?

रमणी—पहेली है यह विश्वासराव।

विश्वास—मैंने तीन विवाह किए हैं अब तक...लेकिन अपने राम के सामने कभी ऐसी पहेली पैदा नहीं हुई। यह ठीक है कि मेरी पत्नियों में कोई आर्टिस्ट नहीं थी। तीन विवाह करने के उपरान्त भी अब इस बुढ़ापे में फकीर बन कर रहना आ पड़ा है मेरे भाग्य में...और तुम हो जो इस प्रकार झगड़ती रहती हो ?

रमणी—कौन झगड़ता है ?

रजनी—कौन किससे झगड़ता है ?

विश्वास—तुम स्त्रियां...रोज झगड़ती हो...पतियों से, अरे हम पुरुष इकठा होने पर यही बातें करते हैं या नहीं ?

रजनी—आपके पास उतना ही सत्ता का खेल होता है न खेलने के लिए ।

रमणी—शायद और विषय नहीं होते आप लोगों के पास ?

विश्वास—सुहावना विषय यही होता है।...अरी यदि हम चित्रकार औरतों के बारे में बातें न करें तो और करे कौन ? स्त्रियों के कारण ही तो हमारी कला जीवित है ।

रजनी—सच है—

विश्वास—सच तो है ही । स्त्रियों के चित्रों के अतिरिक्त और चित्रों को बाजार में भाव है ही कहाँ ?

रजनी—क्या इसलिए हमारी विडम्बना करते हैं ?

विश्वास—विडम्बना ? कैसी पगली हो बेटियों ! यह क्या विडम्बना है ? संसार के बाजार में यदि किसी ने स्त्रियों की कीमत बढ़ाई है तो वह हम चित्रकारों ने (**बलवन्तराव और बाबूराव आते हैं । दोनों समवयस्क...उम्र तीस से कम आधुनिक पोशाक...अधिक कीमती नहीं ...निरन्तर नंगे सिर घूमने वाले...।**) आइए ! आइए बलवन्तराव... आइए बाबूराव...अब ठीक रहा। दोनों पतियों का बड़ा सुन्दर मेल रहा ।

बाबूराव—मुझे आज बहुत बुरा लग रहा है । कितने उत्साह से बिचारे ने चित्र बनाए थे... ।

बलवन्त—ऐसा उत्साह किस काम का ? संसार से न्यारा बर्ताव रखकर किस प्रकार काम चलेगा बाबूराव ! ऐसी ज़िद मुझे अच्छी नहीं लगती ।

बाबूराव—यह भी ठीक है । लेकिन फिर भी मुझे बुरा लगा... किसी ने हाथ भी न लगाया उन चित्रों को, यों ही फेंक दिए देखते ही ! अब आप ही बताइए विश्वासराव यदि आप कमेटी में होते तो क्या करते ?

विश्वास—मैं कमेटी में हूँ नहीं न ? फिर व्यर्थ अन्दाज लगाने से फायदा ? पूछना है तो अपनी पत्नी से पूछो ।

बाबूराव—वह क्या जाने यह सब ?

विश्वास—लेकिन चित्रकार हैं न वह ?

बाबूराव—है यानी है बस,...पर कुछ भी हो वह नारी है। बिना सोचे उत्तर नहीं देगी, क्यों जी, ठीक है न ?

रमणी—जवाब दो न रजनी ?

रजनी—कुछ भी हुई तो भी मैं औरत जात हूँ...विचार करने के लिए समय चाहिए न मुझे ?

विश्वास—कितना समय चाहिए ?

रजनी—पाँच साल।

बाबूराव—सुनिए विश्वासराव।

विश्वास—पाँच साल ?

रजनी—मैं समझती हूँ पाँच साल भी पर्याप्त न होंगे। बड़े महत्त्व का प्रश्न है यह। कम से कम बीस-पच्चीस साल तो सहज ही लग जाएँगे।

बलवंत—रजनी जी का स्वभाव बड़ा विनोदी है! भाग्यवान हैं आप बाबूराव।

बाबूराव—और आप ?

बलवन्त—हमारा क्या...चल रही है पुराने जमाने की घर-गिरस्ती।

रमणी—लेकिन दादा क्यों नही आया अब तक ?

बलवन्त—सदमा पहुँचा होगा बिचारे को...स्वाभाविक भी है। किसे बुरा न लगेगा। आदमी सर्वस्व व्यापार में लगा दे और एकदम दिवाला पिट जाय, वैसा हुआ है यह।

विश्वास—लेकिन व्यापार करे तब न ? पानी मे पैसे बहाकर रोने से फायदा ?

रजनी—यह पुरुषों की दृष्टि है!

बाबूराव—और औरतों की ?

रजनी—औरतों की आँखें गिरवी रक्खी होती है नहीं तो देखतीं वे, और यदि देखतीं तो दिखाई भी देता, पर आँखें ही अपने वश नहीं है यह

कैसे देखा जाय। (**कल्याणी आती है। सुन्दर, चपल और ठसकवाली... युवती...आयु लगभग तेईस-चौबीस...भड़कीले और कीमती कपड़े पहनने वाली...बार-बार पोशाक और केशरचना बदलने की शौकीन**)... आ गई ? रहा नहीं गया शायद ?

कल्याणी—क्यों ?

बलवन्त—शायद तुम्हें पता नहीं लगा ?...बहुत बुरा हुआ।

कल्याणी—क्या बुरा हुआ ?

विश्वास—कहते हैं सुन्दरराव के चित्र नहीं लिए गए।

कल्याणी—यही न ? इसमें क्या बुरा हुआ ? यह तो होना ही था ऐसा न होता तब आश्चर्य था।

विश्वास—अब सुन लीजिए। और इसे कहते हैं आत्मीयता।

कल्याणी—जी हाँ, मैं आत्मीयता से ही कह रही हूँ। क्या बिगड़ा उसमें ?

बाबूराव—क्या बिगड़ा ? इज्जत जो चली गई। क्या उसे अब कहीं मुँह दिखाने को भी जगह रही है ? मैं होता तो डूब मरता ?

रजनी—यही अन्तर है !

कल्याणी—हाँ...यही अन्तर है। मुझे बड़ा आनन्द हुआ।

बलवन्त—कितनी दुष्टता है यह। आनन्द हुआ ? सुन्दरराव की दुर्दशा हुई...बेइज्जती हुई इसलिए तुम्हें आनन्द हुआ ?

कल्याणी—आनन्द हुआ, पर वह दुर्दशा हुई इसलिए नहीं...उनकी विजय हुई इसलिए।

विश्वास—चित्र अस्वीकार लिए गए इसमें सुन्दरराव की विजय हुई ?

कल्याणी—हाँ।

विश्वास—किस प्रकार विजय हुई ?

कल्याणी—मूर्ख की सिफारिश यानी पराजय...उनके द्वारा दुत्कारा जाना ही सच्ची विजय है।

बाबूराव—इसका तात्पर्य यह हुआ कि ये सब परीक्षक मूर्ख हैं... बुद्धिमान है केवल तुम्हारा सुन्दरराव ?

कल्याणी—ठीक यही।

विश्वास—सुन लीजिए...सुन लीजिए...कैसे मोती बिखर रहे हैं, सुन लीजिए। समस्त संसार ही बदलता जा रहा है।

बलवन्त—जो जैसा समझता है वैसा बोलता है। अपने को न जँचे तो ध्यान न देना चाहिए और अपना मार्ग स्वयं चुनना चाहिए।

रमणी—आप कुछ भी कहिए लेकिन दादा की बराबरी कोई दूसरा नहीं कर सकता।

विश्वास—बलवन्तराव भी नही ?

रमणी—यह मैंने कब कहा !

विश्वास—तुम्हारी तुलना सारे संसार से न थी, प्रश्न था चित्रकारों का और यह बलवन्तराव भी सुन्दरराव की भाँति ही एक चित्रकार है...।

बलवन्त—सुन्दरराव की भाँति चित्रकार नहीं जी...मैं अपने तरीके का एक चित्रकार हूँ। मेरी किसी से तुलना नही होनी चाहिए।

रजनी—मैं कहती हूँ...सुन्दरराव की बराबरी कोई नहीं कर सकता।

बाबूराव—और तुम ?

रजनी—सुन्दरराव की बराबरी कोई नहीं कर सकता।

बाबूराव—मैं नहीं मानता। पिछले साल तुम्हें स्वर्ण-पदक मिला...

रजनी—ऐसे पदक कला की कसौटी नही। मैं बहुत चाहती हूँ... सुन्दरराव का अनुकरण करना चाहती हूँ...पर...।

कल्याणी—पर क्या ? दिल से चाहती हो न ? फिर क्यों अपने दिल की आज्ञा का पालन नहीं करतीं ?

रजनी—मै मजबूर हूँ। मै अपनी स्वामिनी नहीं।

कल्याणी—कहाँ खो दिया अपना स्वामित्व ?

रजनी—विवाह की वेदी पर !

कल्याणी—कह क्या रही हो पगली सी ?

विश्वास—और वह भी प्रत्यक्ष बाबूराव यहाँ सामने होते हुए, धन्य है यह स्त्री जाति !

बाबूराव—अब आप ही देख लीजिये विश्वासराव। आप बुजुर्ग हैं इसलिये पूछता हूँ...क्या ऐसा कहना इसे शोभा देता है ? और वह भी यहाँ चार आदमियों के बीच। फिर भी गनीमत है कि सुन्दरराव यहाँ नहीं है। होता तो मैं पानी-पानी हो जाता। (**सुन्दरराव आता है, आयु में तीस से कम, एक युवक आर्टिस्ट...बाबूराव बलवन्तराव की भाँति ही पोशाक...दिखने में तेजस्वी...बातचीत में तेज; निरन्तर दूसरे को मात देने की प्रवृत्ति लिए हुए...आँखें पानीदार, देखते ही देखने वाले पर प्रभाव डालने वाली...स्वभाव शान्त पर अवसर पर फुर्तीला... सर्वसाधारण तौर से मौजी स्वभाव वाला** ।)...और यह है हमारा आधुनिक पत्नी धर्म।

सुन्दर—(**हँसते हुए**) क्या हुआ पत्नी धर्म को ?

विश्वास—अरे हँस रहे हो ?

सुन्दर...तो क्या रोऊँ ? किसलिए ?

बाबूराव—तुम्हें नही मालूम। तुम्हारे चित्र प्रदर्शनी में नहीं लगाए गये... फेंक दिये गए।

सुन्दर—जानता हूँ... ।

विश्वास—फिर भी हँस रहे हो ?

सुन्दर—उसी का मुझे आनन्द है। यदि चुन लिए जाते तो मुझे बहुत दु:ख होता।

बलवन्त—फिर भेजा ही क्यों था उन्हें ?

सुन्दर—फेंक देते है या नहीं यह देखने के लिए। सोचा, इतने दिनों बाद भी कुछ अकल आई या नहीं इस बात का अन्दाज ले रहा था, पर अब समाधान हुआ। नहीं...प्रगति नहीं हुई...अब भी जहाँ थे वहीं हैं।

बाबूराव—बुजुर्ग लोग है वे, इस बात का स्मरण है ?

सुन्दर—मैं सबसे बुजुर्ग हूँ। पैदा होने में जरा देर हो गई यही मेरी गलती हुई।

विश्वास—यह अकड़ ठीक नही सुन्दर। अभी तुम्हारी ज़िन्दगी आगे है। जीना है और घर-गिरस्ती बसानी है...

सुन्दर—लेकिन पहले कला की सेवा करनी है।

बलवन्त—और हम क्या कर रहे है ?

सुन्दर—कला का सौदा...केवल कला का विक्रय। आप लोग कला की विडम्बना कर रहे हैं।

रजनी—शाबास सुन्दरराव, किसी न किसी ने यह बात सुनानी ही चाहिए थी इन लोगों को।

विश्वास—चलिये...निकलिये। इससे बात करने में कोई अर्थ नहीं। व्यर्थ आये यहाँ टाँगें तोड़ते हुए। बहुत आगे बढ़ गया है यह। **(उठता है)**।

बाबूराव—चलिये, चार आदमियों में नाहक फजीहत क्यों करवाए ...चल रहे हैं बलवन्तराव ?

बलवन्त—इन बुजुर्ग महाशय की बहनजी को भी तो चलना चाहिये।

रमणी—मैंने आने के लिये ना कब की ? जो होना था पता लग गया...मेरा समाधान हो गया !

बाबूराव (रजनी से) और आप ?

रजनी—मैं थोड़ी देर बाद आऊँगी।

बाबूराव—मन्त्रणा करनी है शायद ?

विश्वास—चलिए जी। वह आ जायगी। ऐसी कौन सी मंत्रणा करेगी। हुआ तो फिर आयेंगे हम लोग...चलिए।

(विश्वास, बलवन्तराव, बाबूराव और रमणी जाते है)

सुन्दर—**(कल्याणी से)** तुम कुछ नहीं बोली ?

रजनी—जो कहना था वह उसने पहले ही कह दिया।

कल्याणी—मुझे क्या अधिकार है? मैं ऐसी कौन हूँ? किसके लिए बोलूँ मैं? और मेरे बोलने से फायदा भी क्या होगा?

सुन्दर—तुमने देखे थे वे चित्र! (**रजनी से**) और तुमने? कैसे लगे तुम्हें?

रजनी—हमारे मत को कौन पूछता है?

सुन्दर—लेकिन तुम्हे लगे कैसे?

रजनी—सच बताऊँ? मेरी सनझ में नहीं आए। लगा कुछ अनोखी सी कल्पना है। अमीरी और गरीबी का अन्तर दिखाया है। देखते ही मन पर परिणाम हुआ...क्षोभ पैदा हुआ...पर उनका रहस्य समझ मे नहीं आया।

सुन्दर—तुम्हें किसी ने सिखाया ही नही। स्वभाविकता से जाना... पर शब्दों मे कहते न बना। यही न? ठीक। (**कल्याणी से**) और तुम्हें क्या लगा।

कल्याणी—सच! मुझे क्या लगा?

सुन्दर—यह मेरे प्रश्न का उत्तर नही।

कल्याणीं—उत्तर देने का समय अभी नहीं आया है।

सुन्दर—(**बेचैनी से हाथ मलता हुआ**) अभी समय नही आया! कब आयगा यह समय! क्या ऐसा ही चलता रहेगा सृष्टि के अन्त तक! जो कुछ भी नही जानते वे बराबर बकवास करते रहते है...और जो जानते है उन्हें मुँह खोलने की भी हिम्मत नहीं होती। फिर भला संसार को सत्य कैसे पता लगे। (**उठकर**) कृष्णा! अरे ओ कृष्णा!

रजनी—वह है कहाँ घर में।

सुन्दर—कोई भी मेरी नही सुनता। नौकर-चाकर भी मुझे कुछ नही समझते।

कल्याणी—किस लिए चाहिए है कृष्णा? गया होगा कहीं बाहर;

रजनी—इस तरह घर खुला छोड़ कर?

कल्याणी—पर उसकी जरूरत क्या है ?

सुन्दर—मेरे जूते पोंछने के लिए। यहाँ झाड़ू लगाने के लिए !

कल्याणी—मैं पोंछती हूँ जूते...झाड़ू लगा देती हूँ।

सुन्दर—तुम ? लखपति की बेटी तुम ?...अपने घर मे भी कभी झाड़ू लगाई थी ?...वह रेडियो, किसने बंद कर दिया ?...अव्यवस्था फैली है चारों ओर !

रजनी—घर में घरवाली न होने से ऐसा ही होगा।

सुन्दर—और होने से समझती हो सुख लगता है ?

रजनी—सच है...वह भी नहीं कहा जा सकता। आज आपकी वे शिष्याएँ नहीं आईं ?

कल्याणी—उन्हें भी पता चल गया होगा...विश्वास उठ गया होगा उनका।

सुन्दर—सम्भव है। अब मुझे कुछ भी असम्भव नही लगता। (**कृष्णा आता है बम्बई के घरों में दिखाई देने वाले, रामा (नौकरों के लिए प्रयुक्त सर्व सामान्य सम्बोधन) की भाँति दिखाई देने वाला। बुद्धिमान, चालाक पर काफी अनउत्तरदायी...संगीत में रुचि रखने वाला...गुन-गुनाने की आदत**) कहाँ थे ?

कृष्णा—यही नही था ?

सुन्दर—फिर जवाब क्यों नही दिया ?

कृष्णा—दूर था वहाँ...पान खाने गया था।

सुन्दर—स्टूडियो साफ नही किया ?

कृष्णा—नही किया ?

सुन्दर—कब किया !

कृष्णा—कल।

सुन्दर—और आज !

कृष्णा—यो कूड़ा है ही कहाँ। कही जरा सा रंग गिरा है, कहीं कुछ कागज हैं और कहीं इधर-उधर जरा सी धूल पड़ी है। लगाऊँगा

झाड़ू कल...तब तक काम चल ही रहा है। मिट्टी से कचरा ही होगा इसलिए सोचा आज ही क्यों झाड़ू लगाऊँ ?

सुन्दर—यह हो रहा है। यही संसार में चल रहा है। फिर से कूड़ा इकट्ठा होगा इसलिए पड़ा हुआ कूड़ा कोई नही झाड़ निकालता। **(कृष्ण से)** जाओ चाय बनाओ।

(कृष्ण 'जी' कह कर जाता है, तभी कुंदा और मंदा आती हैं, बारह चौदह साल की, पोशाक आजकल के किसी भी स्कूल की लड़कियों सा।)

रजनी—ये आ गईं शिष्यायें। क्यों री कुन्दा, मदा देर क्यों लगाई आने में।

कुंदा—मैं समय पर कब आई हूँ ? और आ ही जाऊँ तो मास्टर साहब कहाँ होते हैं यहाँ ?

मंदा—नहीं जी...में ठीक समय पर आती हूँ, पर आज मुझे गाने के लिये जाना था।

कल्याणी—अच्छा ? तूलिका के साथ तंबूरा भी हाथ मे लिया है ?

सुन्दर—तुम्हें गाना आता है मदा ?—मुझे अभी तक पता नही था।

कुंदा—यह सच हे मास्टर साहब ?

सुन्दर—क्या ?

कुंदा—सुना है इस वर्ष भी आपके चित्र नापसंद कर दिये गए ?

सुन्दर—हाँ।

कुंदा—फिर अब ? पिताजी ने कहा ऐसे मास्टर की कक्षा मे न जा...।

सुन्दर—शाबाश है तुम्हारे पिता जी की। कल से तुम्हारा आना बन्द है न ? फिर आज ही चली जाओ।

कुंदा—इस तरह गुस्सा क्यों हो रहे हैं मास्टर साहब। आगे भी तो सुनिए...

मंदा—बहुत गुस्सा हुए थे इसके पिता जी, पर मैंने उन्हें समझाया...।

रजनी—इसके पिता जो को तूने समझाया ! शाबास ! कैसे समझाया ?

सुन्दर—बस करो। ...मुझे कुछ भी नहीं सुनना है। जाओ, दोनों निकल जाओ...और औरों को भी बतला दो, ढिंढोरा पीटो सारे शहर में...जाओ।

मंदा—ऐसा भी क्या मास्टर साहब। पहले सुनतो लीजिए...।

सुन्दर—अच्छा कहो...सुनता हूँ ..चाहे जो कहो सब सुनता हूँ। संसार की बातें सुनने के लिये ही तो मैं पैदा हुआ हूँ ? हाँ, कहो...कहो, रुक क्यों गई ...कहना शुरू करो।

कल्याणी—इन जरा सी लड़कियों को क्यों ऐसी सुना रहे हैं ? उन्हें क्या समझ है ? जो लोगों से सुनती हैं वही तो कहती हैं ? मन को शान्त रखने की आवश्यकता है तो इसी समय।

सुन्दर—थेंक यू...हाँ...क्या कह रही थीं तुम ?

मंदा—क्या भला कह रही थी मैं ? एकदम भूल गई।

कल्याणी—अब रहने दो। तुम्हें गाना आता है न ? फिर एक मीठा सा गाना तो सुनाओ।

रजनी—खूब ! अच्छा उपाय निकाला, त्रस्त प्राणों के लिये गाने जैसी दूसरी औषधि नहीं।

कल्याणी—पर सुनो मंदा, कोई रुलाने वाला गाना न गाना। आजकल बड़ी बाढ़ आई है रुलाने वाले विरह गीतों की...वैसा गाना नहीं, समझी ! कोई उत्साहदायक, वीर श्री उत्पन्न करने वाला गाना गाओ।

सुन्दर—क्या गाने से शान्त होगा मेरा मन ? कलेजा फटा जा रहा है भीतर से ! फिर भी बाहर से मैं हँस रहा हूँ...पाखड कर रहा हूँ... केशवसुत ने है सो झूठ नहीं 'ये दिन चिन्ता के, परन्तु मिथ्या हँसने के...।

कल्याणी—५ ..न जाने दो, मुझे तब गाना गाने दो...हाँ गाओ मंदा।

मंदा—क्या गाऊँ कुन्दा ?

कुन्दा—मैं क्या बताऊँ ? मैं कहाँ तुम्हारे गाने जानती हूँ। (**मन्दा सुर मिलाती है...फिर धीरे-धीरे गुनगुनाती है...तभी कवि ग्रॉथर और नट प्रवेश करते हैं**)।

कवि—ठहरो !

ग्रॉथर—सुन्दरराव, यह क्या गड़बड़ है ?

कल्याणी—कैसी गङबड ?

ग्रॉथर—कहती हो कैसी गड़बड़...सारी बम्बई जान गई हैं...।

कवि—कि इसके पश्चात् सुन्दरराव का प्रदर्शनियों से बहिष्कार किया जायगा। और पूछ रही हो कैसी गड़बड़ ?

रजनी—अजी जरा बोलने भी तो दीजिए। ये नटवर्य देखिए...कुछ कह रहे हैं।

नट—शब्द...समझे ?...शब्द का मोल है। अक्षर कौड़ी कीमत का है। कहते हैं साहित्य।...बोलने वाला न होता तो लिखने वाले को कौन पूछता ? पहले क्या ?...बोलिये ! पहले शब्द की पहले अक्षर ?

ग्रॉथर—बस करो अपना शब्द। पहले मुझे यह बताइये कि क्या यह खबर सही है ?

सुन्दर—और यदि सही हो तो ?

ग्रॉथर—तो मैं उस विषय पर एक उपन्यास लिखने वाला हूँ।

नट—नाटक क्यों नहीं लिखते !

ग्रॉथर—उस नाटक को खेलेगा कौन ? इन आर्टिस्ट लोगों से जनता परिचित है कहाँ ! नाटक का विषय परिचय का...लोगों के परिचय का हो तभी तो समझेंगे दर्शक ! आर्टिस्ट का विषय नाटक के योग्य नहीं।

कवि—यह विषय काव्य के योग्य है।

ग्रॉथर—सच है...काव्य कोई पढ़ता नहीं।

कल्याणी—कैसे स्वार्थी हैं यह लोग।...सभी अपने-अपने फायदे की सोच रहे हैं। क्या पूछा था यह भी याद नही किसी को।

सुन्दर—यही बात है। दूसरे का दुःख अपने मन बहलाव का साधन होता है। इसलिए संसार में दुख को महत्व दिया जा रहा है। नहीं तो कोई किसी को न पूछता। ठीक है बन्दो कह लो, चाहते क्या हो? मेरी फजीहत हुई यही न? ठीक है वह! ...

कवि—बड़ा आश्चर्य है। रजनी, तुम्हारा क्या ख्याल है?

रजनी—मैं भी यही सोचती हूँ।

कवि—कि सुन्दर की फजीहत हुई। सुन लीजिए ऑथर, यह है आपकी स्त्री देवी समझे!

ऑथर—और तुम्हारी?

नट—दोनों एक जैसे हैं...दोनों ही एक जैसे हैं। जरा भी कसक नहीं, हृदय में टीस नहीं...जी नहीं...जलता धधक नहीं उठता, क्या समझते हो तुम लोग! ऐं? क्या समझते हो? उन लड़कियों को देखो...वे सुन्दरराव की शिष्यायें क्या सोचेंगी?...ऐं...बोलो, क्या सोचेंगी वे?

कुंदा—कुछ नही सोचतीं हम। कुछ भी नहीं सोचतीं।

ऑथर—लो...हुई फजीहत।...भाई, यह तुम्हारा काम नहीं है। निरीक्षण चाहिए...अवलोकन चाहिये...सूक्ष्म दृष्टि, भावुकता चाहिये। ज्ञानेश्वर के भैंसे की भाँति चिल्लाने भर से संसार का मर्म नहीं पता लग सकता।

कल्याणी—प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना राग अलाप रहा है।

सुन्दर—ऐसा न कहो कला। अपनी ओर देखे बिना दूसरा नहीं जाना जा सकता। पहले अपने आपको परखना चाहिए। कौन सी भूल की उन्होंने, हर व्यक्ति अपने हिसाब से देखता है। ससार की दृष्टि में मेरी छी थू हुई। यह प्रसंग उन पर आता तो उन्हें दुःख होता। वही तो उन्होंने महसूस किया...और इसीलिए वे मेरा समाचार लेने आए। पर मैंने वैसा अनुभव नहीं किया...।

कवि—क्या कह रहे हो? क्या तुम नहीं समझते कि तुम्हारी छी थू हुई?

सुन्दर—नहीं। मुझे लगा कि मेरी विजय हुई।

ऑथर—सुन लो लाला...इसे कहते हैं मर्द। नही तो तुम, बासे सूँघे हुए गजरे के फूल चुनने वाले तुम...।

सुन्दर—ऐसा न कहो, उसके हिसाब से उसका कहना ठीक है। तुम मुझे मर्द कहते हो...कहते हो न ?...फिर क्यों आए मुझ से पूछने ! पर है भी ठीक ही...तुम्हें सहानुभूति महसूस हुई। सारी बम्बई में चर्चा फैली, समाचार-पत्र चिल्लाने लगे इसीलिए तुम मुझ से पूछने आए ? क्यों ? देखा कल्याणी यह इस प्रकार है...व्यक्ति जब दूसरे पर दोषारोपण करता है तब यह नहीं देखता कि वह स्वयं क्या करता है।

ऑथर—वाह, यानी हमारी सहानुभूति शायद बेकार ही चली गई ?

सुन्दर—तुम समझते हो न कि मैं मर्द हूँ ? फिर सहानुभूति कैसी ? ...प्रसंग पर ही तो सहानुभूति दिखाई जाती है ? पर जब मैं इसे 'प्रसग' नहीं समझता और तुम मुझे मर्द कहते हो इसलिए तुम भी नहीं समझते फिर पूछने क्यों आए ?

रजनी—हाँ...अब दीजिए न उत्तर !

कवि—कुंदा...मंदा...तुम मेरा वह गीत तो सुनाओ। क्या रक्खा है इस व्यर्थ की चर्चा में ? काव्यानन्द की भाँति दूसरा आनन्द नहीं। इस आनन्द में सब दुःख भूल जाता है।

नट—फिर दुःख कहा ! ऐ ! फिर से दु.ख कहा ? अल्पबुद्धि युवक, फिर से दुःख कहा ? हजार बार वह कह रहा है कि मुझे दुःख नहीं हुआ, यह प्रसंग नहीं यह विजय है, फिर भी कहते हो कि दुख हुआ। धिक्कार, धिक्कार... धिक्कार है तम्हें !

कल्याणी—सारा बनावट का बाजार है।

ऑथर—कौन बनावटी ? हम लोग ? सुन लो कवि...सुन लो नटवर्य... हम लोग बनावटी हैं...और तूलिका की झाड़ू से मोटे कागज, कैनवास का आँगन बुहारने वाले ये हैं जन्मजात प्रतिभा के पुतले ! चलिए यहाँ क्षण भर भी नहीं ठहरना चाहिए...जहाँ आदमी में इन्सानियत

नहीं वहाँ कोई क्या बात करे ? चलिए।

कवि—सच है... सच है। रंगों के पात्र में डुबकियाँ लगाने वाले ये मेंढ़क शब्द की कीमत क्या जाने ? चलिये।

नट—शब्द...केवल शब्द...'हम शब्द सृष्टि के ईश्वर'।

ऑथर—तुम लोग नहीं...हम।...हम लेखक लोग...ज्ञानेश्वर के वंशज...।

कवि—तुम भी नहीं... शब्द सृष्टि के ईश्वर हम हैं। ज्ञानेश्वर क्या कहते हैं ? 'अब वंदू कवीश्वर, जो शब्द सृष्टि का ईश्वर'...।

ऑथर—बस हुआ। चलिए...(**तीनों जाते हैं।**)

सुन्दर—देखा कला ?...देखा रजनी ?...यह चल रहा है संसार में ...और यह नई पीढ़ी चुपचाप देख रही है। यह क्या सोचेंगी ? हम सब इस प्रकार आपस में झगड़ रहे हैं...बच्चे देख रहे हैं और हम सम्मान की अपेक्षा करते हैं। कहीं भी सच्चा अन्तःकरण नही...कोई भी ईमानदार नहीं...जी चाहता है...जाने दो, छोड़ो उस विषय को। हाँ कुन्दा ...मन्दा...होने दो तुम्हारा गाना आरम्भ।

कल्याणी—सुना कैसे जाता है गाना ? मुझे स्वयं आश्चर्य होता है ...जी जैसे तिलमला उठा है...क्रोध आता है दुनिया पर, पर सोचती हूँ...।

रजनी—क्या सोचती हो ?

कल्याणी—कुछ नहीं !...गाओ तो मन्दा !...अच्छा सा समझीं ! मधुर सा, एक दम ताजे फूल की भाँति कोई मीठा गाना गाओ।

कुन्दा—अब नहीं गाया जाता मुझ से। न जाने कौन-कौन आता है... क्या-क्या बातें करता है, जी ऊब उठता है।

मन्दा—पहले पिता जी घर पर नाराज हुये थे...किसी तरह मैंने उन्हें समझाया...।

कुन्दा—मुझे आने भी नहीं दे रहे थे...ऐसा क्या हुआ है मास्टर साहब ?

सुन्दर—(हँसते हुए)...मुझे स्वयं अब तक नहीं मालूम।

कुंदा—चित्र ना पसन्द करने से क्या होता है ? और ये नापसन्द करने वाले कौन होते हैं ? कम से कम मुझे तो आपके चित्र बहुत पसन्द हैं !

रजनी—(मंदा से) और तुम्हें !

मन्दा—मुझे ? हं: !...सुनने के लिए तुम होनी चाहिए थीं। कैसे तड़ाक से बोल रही थी इसके पिता जी के सामने...।

कल्याणी—जरा मुँह तो देखो बोलने वाली का ! मुँह पर की मक्खी तो उड़ाई नहीं जाती और कहती है, तड़ाक से बोली...।

कुन्दा—ऐसा न कहिए, सचमुच यह बोली थी...एकदम चुप कर दिया था इसने पिता जी को। इसीलिए तो मैं आई...फिर भी शंका है ही, न जाने किसने क्या कह दिया है उनसे...वे एक दम गुस्सा हैं।

सुन्दर—देख लिया ? यह हाल है। मैं नहीं जानता था कि इतनी जल्दी यह बादल घर-घर पर छा जायगा !

रजनी—परिश्रमी लोग जो हैं ? एक-एक व्यक्ति प्रचार करता हुआ घर-घर घूम रहा था।

कल्याणी—सब परम्परा के गुलाम हैं। जरा भी कोई गन्दा मार्ग छोड़ कर नया मार्ग निर्माण करने लगे तो जान निकलने लगती है मरों की।

कुंदा—एक बार पिता जी को समझाइएगा मास्टर साहब ?

सुन्दर—माफ करो लड़कियों, यही नहीं हो सकता। मैं किसी के भी सामने याचना नही करूँगा...फिर भूखा ही क्यों न मरना पड़े, वह स्वीकार है।

मन्दा—यह ठीक है। पर फिर हमारा क्या होगा ? फिर हमें कौन सिखायेगा ?

सुन्दर—वाह ! और बहुत से हैं। इसके अतिरिक्त आर्ट स्कूल हैं !

मन्दा—मुझे ड्राइंग मास्टर नहीं होना है...।

कल्याणी—फिर क्या होना है ?

मन्दा—मुझे मास्टर साहब की भाँति ही बड़ी चित्रकार बनना है !

रजनी—यानी जिसके चित्र फेंक दिए जाते हैं ऐसी ही चित्रकार न ?

कुंदा—फेंक देने दो ! हम स्वंय ही अपने चित्र देखती बैठेंगी ।

सुन्दर—(**अर्धस्वगत**) यह वृत्ति आगे चल कर बनी रहेगी । यह बाल्यावस्था, यह स्वाभाविक जीवन...स्वाभाविक विचार...स्वाभाविक दृष्टि, साफ गायब हो जाती है व्यवहार के प्रहार होते ही !

कुन्दा—यह व्यवहार क्या होता है मास्टर साहब ?

सुन्दर—अभी न करो उस बात का विचार । बाद में अपने आप जान जाओगी ।

कुंदा—यह ठीक नहीं मास्टर साहब ।...बताइए न ?

सुन्दर—यह जो मैं तुम्हें नहीं बता रहा हूँ, इसी को व्यवहार कहते हैं ।

रजनी— इस तरह क्यों बता रहे हैं उन्हें ?...मैं बतलाती हूँ सुनो...

सुन्दर—ना रजनी, निर्मल मन में विष का बीज क्यों बोती हो ? कहते हैं अज्ञान में आनन्द होता है वह बात झूठ नहीं । कुन्दा, मंदा आओ हम लोग एक बार उस आनन्द का आस्वादन कर लें । तुम लड़कियों ने यदि जिद्द भी की तो भी तुम्हारे माता-पिता तुम्हारी नही सुनेंगे । इसलिए आज का यह आखिरी दिन है । इसके बाद उजाड़ हो जायगा यह स्थान ।..पिशाच की भाँति तूलिका चलाते हुए यहाँ मुझे अकेले ही बैठना पड़ेगा । इसलिए जाने से पहले कुछ मीठी सी यादगार छोड़ जाओ यहाँ । एक अच्छा सा गीत तो सुनाओ...एक दम मीठा-मीठा...इतना मीठा कि रोना आ जाय । (**दोनों केवल देखती रहती हैं**) नहीं सुनतीं ! सच है...अब मेरी कौन सुनता है । संसार ने नासमझ ठहराया हुआ मैं आदमी... ।

कुन्दा—नहीं मास्टर साहब...क्षमा कीजिए...ऐसी बातें न कीजिए...।

मन्दा—क्या गाऊँ कल्याणी ?

कल्याणी—प्यार करके रे किया क्या पाप, गाओ ।

सुन्दर—सच है यह । यही प्रश्न मेरे सामने खड़ा है ।

रजनी—किस से प्रेम किया ?

सुन्दर—अपनी कला से ।

रजनी—कला से ? इस कला से ? कल्याणी से ?

सुन्दर—कला से...अपनी चित्रकला से... ।

(वे दोनों एक दम गाने लगती हैं...वह चुप हो जाता है)

गीत

प्यार करके रे किया क्या पाप
व्यक्त करना भावना भी मना ?
सही मैंने सजा सब प्यार की
पर असह हाय सुख की वेदना...

बाबूराव—**(प्रवेश करके)** हो गईं तुम्हारी मंत्रणाएँ ?

(कोई भी उसकी बात नहीं सुनता...गाना ज़ारी है)

अब क्या कहा जाय इन लोगों को ? महफिलें हो रही हैं गाने की !... अरे क्या हम लोग नहीं गाते । मैं चित्रकार हुआ तो भी गायक हूँ यह जान लो...अरे कान फूट गए हैं तुम लोगों के ?...**(अकस्मात)** अपने आप वह उनके साथ गाने लगता है ।

सुन्दर—कौन बाबूराव ! वाह ! अच्छा साथ हुआ । नई और पुरानी पीढ़ी इस प्रकार एक सुर में गाने लगे तो यह पृथ्वी स्वर्ग बन जाए ।

बाबूराव—**(क्रोध से दाँत पीसते हुए)** किया क्या पाप ? विवाह किया न हमने । वही भूल हुई...कहीं फिसल पड़े । और चित्रकला घर में ले आए ।

कुन्दा—पर पहले गायन कला तो थी ही न घर में ?

बाबूराव—गायन कला को कौन पूछता है ? उसका कोई प्रदर्शन नहीं करता । इसके अतिरिक्त मैं भी ऐसा कौन कोई बड़ा गायक हूँ ? जरा गुनगुना लेता हूँ नहाते समय ! किया क्या पाप ।

कुन्दा—**(मुँह बनाते हुए)** फिर गा रहे क्यों आप ?

बाबूराव—अब चलो घर। चूल्हा तो जलना चाहिए घर में चित्र चाटने से पेट नहीं भरता।

कुन्दा—और इनके चित्र जो बिके हैं। बारह सौ रुपये मिले हैं न ?

मंदा—और छः सौ रुपये का पुरस्कार मिला है सो अलग ! और स्वर्णपदक !...

कुन्दा—और आप कौनसी नौकरी करते हैं जी बाबूराव ?

बाबूराव—तुम्हें थप्पड़ लगाने की। ज़बान बहुत चलने लगी है। बहुत सिर पर चढ़ा रक्खा है छोकरियों को। बड़ा बूढ़ा कोई है नहीं लगी बक-बक करने, चलो घर अब।

मंदा—और आपको... ।

रजनी—चुप रहो जी...चलिए।...आ रही हो कला ?

कल्याणी—नहीं तुम जाओ।

बाबूराव—और तुम इसके साथ यहाँ अकेली रहोगी ? कुछ लाज-शरम है या नहीं ?

सुन्दर—जाओ कला मुझसे बिछुड़ गई हैं अब। मुझे कोई नहीं चाहिए। सब चले जाओ। उकता गया है जी इस मनुष्य जाति से... इन्सानियत ढूँढ़ने के लिए अब मुझे कुत्ते बिल्लयों को अपनाना पड़ेगा।

बाबूराव—क्यों हिम्मत हार रहे हो सुन्दर ? यह अपना पागलपन छोड़ो और अन्य चार चित्रकारों की भाँति कुछ बनाओ ! कौन कहाँ का वह रशियन या जर्मन हिमालय में जा कर बैठा है, उसका अनुकरण तुम क्यों करते हो ?...

सुन्दर—मैं किसी का अनुकरण नहीं करता ! मैं अपनी जगह स्वतंत्र हूँ।

बाबूराव—पर हम वैसा समझते हैं, संसार समझता है, कि तुम उस रोअरिक का अनुकरण करते हो।

सुन्दर—जाइए यहाँ से...निकलिए। सब लोग चले जाइए। मुझे अपने इस निर्मल स्थान में विष की फुफकार नहीं चाहिए। निकलो

रजनी...जाओ अपने धनी के पीछे । निकलो । और तुम भी जाओ जी...कल से यहाँ न आना । **(कला के अतिरिक्त सबको ढकेलता हुआ बाहर निकालता है)** तुम क्यों रह गईं ? तुम भी जाओ। निकलो यहाँ से । मुझे किसी का साथ नहीं चाहिए। अकेला !...निकलो...

कल्याणी—पर मैं कहती हूँ ।

सुन्दर—कुछ न कहो। क्षमा करो। यहाँ से चली जाओ।

कल्याणी—कैसे जाऊँ ? जो कहना है वह कहे बिना कैसे जाऊँ ?

सुन्दर—मुझे कुछ भी नहीं सुनना है ।

कल्याणी—फिर मैं अपने आप से बात करूँगी। नहीं सुनना तो न सुनिए । पगली कले—**(बडबडाती हुई कल्याणी धीरे-धीरे जाती है । सुन्दर राव देखता रहता है द्वार तक जाकर झाँककर देखकर वापिस आता है और कुर्सी पर बैठता है)**

सुन्दर—अकेला—मैं अकेला—इस समस्त भारतवर्ष में मैं अकेला !

(पर्दा गिरता है)

दूसरा अंक

[स्थान—प्रथम अंक की भाँति। एक अधूरा नग्न चित्र स्डटै पर रखा है। परदा उठते समय कृष्णा भूमि और सामान झाड़ने का फार्स करता हुआ अपने आपसे गुनगुना रहा है।]

कृष्णा—(गाते हुए स्वगत) जमुना बिच खेलूँ खेल अकेली क्या...।

आँथर—(प्रवेश करके) अरे ओ...तेरा मालिक कहाँ है ?

कृष्णा—जमुना बिच खेलूँ...।

आँथर—क्या खेलूँ ?

कृष्णा—खेल अकेली क्या...।

आँथर—चुप रहो।...

कृष्णा—कौन हो जी तुम ? इतना चिल्ला क्यों रहे हो ?

आँथर—मालिक कहाँ हैं तुम्हारे ?

कृष्णा—कैसे मालिक ?

आँथर—तुम्हारे मालिक !

कृष्णा—मेरा नही है कोई मालिक। मैं ही यहाँ का मालिक हूँ।

आँथर —तो सुन्दरराव कौन है ?

कृष्णा—अच्छा वे ? वे मेहमान हैं। कभी कभी यहां आते हैं...कभी रहते हैं। खाते भी हैं कभी-कभी ! मैं ही तो उन्हें खिलाता हूँ।

आँथर—अच्छा ? तो तुम यहाँ के मालिक और वे यहाँ के मेहमान ? खूब !

कृष्णा—खूब क्या ? यह ठीक है। उन्हीं से पूछ लीजिये...वे क्या जानें कि घर में क्या है और क्या नहीं...कि यहाँ कौन आता है और कौन

जाता है...कि रुपया पैसा, क्या है उनके पास ? मैं ही तो वह देता हूँ। ...फिर मालिक कौन हुआ ?

ऑथर—ठीक है। गृहं तु गृहणीहीनं कांतारः !...

कृष्णा—क्या कहा ?

ऑथर--कुछ नहीं...मैं कह रहा था कि घर में घर की मालकिन न होने से नौकर घर का मालिक बन बैठता है...कहानी के लिए बड़ी अच्छी थीम है यह ! कल इस विषय पर एक कहानी लिख ही डालता हूँ !... अच्छा सुन्दरराव कहाँ हैं ?

कृष्णा—मुझे क्या मालूम !

ऑथर—अब क्या किया जाय इसे ?...

कृष्णा—ढूँढा जाय !

ऑथर—कहाँ ?

कृष्णा—पृथ्वी पर। जाइए न ढूँढने !...अब क्या बताऊँ तुम्हें, हमारा सेठ चाहे जहाँ थोड़ा ही मिल जाएगा ? जहाँ कोई सुन्दर सी स्त्री हो वहाँ देखो...वही कही होंगे...

ऑथर—सच है। हमारी यही तो भूल हुई। लेखक को पूछता कौन है ? चित्रकार यही होता है...हाँ...पहले ही भूल हुई अब पछताने से क्या लाभ ! वाह ! **(एक नग्न चित्र की ओर देखते हुए)** वाह यह ऐसा भी देखने को मिलता है इन चित्रकारों को !...भाग्यवान हैं ! चित्र की ओर देखता रहता है तभी बाबूराव आता है।

बाबूराव—**(निश्वास छोड़ते हुए)** वह चित्र है...माडेल नहीं ! हाय रे यह लेखनी !

वाबूराव—सुन्दरराव कहाँ है ?

कृष्णा—जो आता है पूछता है, सुन्दरराव कहाँ हैं ! अरे कोई एक बार इस कृष्णा को भी तो पूछो !...चाय पिलाता हूँ मै और पूछ-ताछ करते हैं...।

ऑथर—सुन्दरराव की ! ठीक तो है ! पुस्तक लिखते हैं हम पर

कहा जाता है कि उसकी बिक्री हुई ऊपरी कवर-चित्र के कारण।...

बाबूराव—फिर चित्र छापते क्यों हैं ऊपर ?

आॅथर—प्रकाशक नहीं मानते ! और वे भी ठीक है, ऊपरी चित्र आकर्षक न हो तो अन्दर देखेगा कौन, पुस्तक खोल कर ? यों ही नहीं बिकते फड़के के उपन्यास !

बाबूराव—(**कृष्णा से**) अरे ओ, मेरी वह आई थी, यहाँ ?

कृष्णा—आपकी कौन ! यहाँ कितनी ही औरतें आती हैं। उनमें से आपकी कौन और मेरी कौन, कौन पहचाने ? बोर्ड लगाना चाहिए पतियों का प्रत्येक के सिर पर !

बाबूराव—अब क्या कहूँ। जैसा मालिक ठीक वैसा ही नौकर, सीधा जवाब देना तो हराम है।

आॅथर—सुनिए बाबूराव, मुझे एक खबर मिली है।

बाबूराव—कैसी ? सुन्दरराव के बारे में ? अब और कौन सी गड़-बड़ की उसने ?

आॅथर—गड़बड़ नहीं...कहते है उसने अपने वे चित्र पेरिस भेज दिए हैं।

बाबूराव—कौन से चित्र ? फेंके हुए ?...कैसा मूर्ख है। पेरिस के चित्रकार क्या अंधे हैं या मूर्ख है ? किसने कहा तुमसे ?

आॅथर—किसी ने कहा हो पर यह बात है ठीक। जिसने कहा है उसी ने अपने हाथों पार्सल किया था।

बाबूराव—लेकिन किसने ? बताओ तो सही...मैं किसी से न कहूँगा।

आॅथर—बलवन्तराव ने बताया। उससे उसकी पत्नी ने कहा। (**रमणी आती है**) अरे बाप रे ! वही आ गई।

रमणी—घबरा से गए ?

आॅथर—कौन घबराया ?...मैं ?...किससे घबराता ? और किस लिए ?

रमणी—दादा आज यहाँ न आएगा। कोई मिलने आए तो उसे कल मिलने के लिए कहा है उसने।

बाबूराव—तुम शायद यही संदेसा लाई हो ?

रमणी—जी। मुझे इसीलिए भेजा है उसने।

आॅथर—बलवन्तराव कहाँ हैं ?

रमणी—होंगे कहीं।

आॅथर—देख लीजिए। भाई का संदेसा लाती है पर इसे पति का पता नहीं, यह है दुनिया।

बाबूराव—यह हाल है दुनिया का। आँखें खोल कर आर्टिस्ट के साथ विवाह किया यही भूल हुई। कही रहती है, कहीं भटकती है, किसी के साथ जाती है...।

आॅथर—और क्या करती है...

रमणी—चुप रहिए।

बाबूराव—कुछ भी नही कहा जा सकता। अब इसे कहाँ ढूँढू बड़ी पागल हो रही है सुन्दरराव के पीछे। सब लोग उसे बुरा-भला कहते हैं और यह उसकी स्तुति के गीत गाती है। ज़रा भी उसे बुरा कहा हुआ सहन नहीं करती !...असल में मैंने ही भूल की।

रमणी—अच्छा आप उसे ढूँढ रहे हैं ? धत् तेरे की ! फिर यों क्यों नहीं पूछा मुझ से ?...

बाबूराव—वह तुम्हें मिली थी ?

रमणी—चलिए मेरे साथ।

बाबूराव—कहाँ ?

आॅथर—अजी कहाँ क्या कह रहे हो ? जाओ न उसके साथ। साथी तो है।

रमणी—चुप रहो। चलिये, (**दोनों जाते हैं**)।

आॅथर—हमें केवल 'चुप रहो' आॅथर जो हैं हम ! ये गायक हैं। गायन कला है, नाचना कला है, चित्र बनाना कला है...कला नहीं है तो

लेखन ! काश, मैं कवि ही होता !...क्यों रे कृष्णा, सुन लिया न ?

कृष्णा—सुनाई नहीं देता क्या मुझे ?

आॅथर—तो कैसा लगा तुम्हें ?

कृष्णा—अच्छा लगा ।

आॅथर—क्या अच्छा लगा ? हमें कोई नहीं पूछता यह अच्छा लगता है ?

कृष्णा—यह बात नहीं, मेरा मतलब कोई औरत किसी को साथ ले जाने लगे तो ज़रा अच्छा लगता है ।

आॅथर—अरे, उसका तो बुरा लगना चाहिए !

कृष्णा—यह भी ठीक है !

आॅथर—तो अब ? यहाँ तो कोई भी नहीं है । यहां बैठ कर क्या करूँगा ? ये ऐसे चित्र देखते ही प्राण व्याकुल होने लगता है । रहा भी नहीं जाता और जाया भी नहीं जाता ! क्यों रे, यह ऐसे चित्र बनाते हैं तब तुम होते हो यहाँ ?

कृष्णा—ना बाबा, कुण्डी ताले लगा कर बनाते हैं ।

आॅथर—अच्छा ? बुरी बात है ।

कृष्णा—यह भी ठीक है ।

आॅथर—तो जो हरीभाऊ ने कहा वह झूठ नहीं...यह दुनिया है !

सुन्दर—(**रजनी के साथ प्रवेश करके**) क्या किया जी दुनिया ने आॅथर ?

आॅथर—दुनिया क्या करेगी ? जो करते हैं वह हम लोग करते हैं और फिर दुनिया हमारे मुँह पर थूँकती है ।

सुन्दर—उसकी परवाह कौन करता है ?

आॅथर—वही तो मैं भी कह रहा हूँ । अच्छा, अब तक कहाँ थे ?

सुन्दर—क्या काम है ?

आॅथर—वैसे काम कुछ नहीं...यों ही गप्पें...

सुन्दर—गप्पें मारने के लिए मुझे अवकाश नहीं है ।

कृष्णा—जाओ चाय बनाओ। (**कृष्णा जाता है**)।

आँथर—क्या कहा ?

सुन्दर—मैंने कहा गप्पें मारने के लिए मै खाली नही हूँ।

आँथर—वह तो दिखाई ही दे रहा है...शायद ऐसा ही चित्र बनाना है।

सुन्दर—जाओ तो यहाँ से।

आँथर—सुना है चित्र पेरिस भज ह !

सुन्दर—उससे तुम्हें क्या ? तुम चित्रकार तो हो नहीं। जाओ देखूँ।

आँथर—अच्छा भाई...रजनी, तुम्हारा पति आया था तुम्हें खोजता हुआ।

रजनी—अच्छा...।

आँथर—अच्छा क्या...उसकी जान तुम्हारे लिये व्याकुल है और तुम यहाँ इस प्रकार भटक रही हो।

सुन्दर—कह रहा हूँ न कि तुम अब जाओ...।

आँथर—यह बात है ! अच्छा, मैं जाता हूँ...पर बाबूराव मुझे मिलेगा, वह रमणी ले गई है उसे...साथ-साथ गए हैं। कैसे मज़े की बात है...(**जाते-जाते लौट कर**) पर चाय ला रहा है न कृष्णा ?

सुन्दर—वह चाय तुम्हारे लिए नहीं है,...अब जाओ तो।

आँथर—जाता हूँ...पर कहाँ, जानते हो ?...बाबूराव को ले आता हूँ। (**जाता है**)।

सुन्दर—कैसा है यह मनुष्य-स्वभाव !...उकता गया हूँ इस दुनिया से। जी चाहता है, सीधा जाऊँ और कहीं हिमालय में रहूँ।

रजनी—फिर मुझ जैसों का क्या होगा ?...आप जैसे लोग हिमालय में जाकर रहने लगें तो हम जैसों को मार्ग कौन दिखायगा ?

सुन्दर—किसी को मार्ग दिखाने का मुझे अधिकार ही क्या है ? मैं कौन होता हूँ ! क्यों कोई मेरी सुने ? मलिन मार्ग छोड़ कर मैं झाड़-

झंकाड़ में से नया मार्ग निकालने का प्रयत्न कर रहा हूँ, उसमें औरों को भी मैं क्यों घसीटूँ ?

रजनी—पर जिन्हें वही भाता है...कटीला रास्ता ही पसन्द है, उनका क्या इलाज है?...उन्हें आप आधे रास्ते में छोड़ जाइएगा ? और क्यों ? कमीने लोग ताने कसते हैं इसलिए ?

सुन्दर—पर वे बातें करते हैं ? उनके घाव लगते हैं न ? जखम होती है हृदय में...उसमे से रक्त बहता है...यह सहन नहीं होता। मैं अकेला होता तो परवाह न करता, पर तुम जैसी स्त्रियों की इज्ज़त पर आक्रमण करते हैं।

रजनी—हम कब इसकी परवाह करती है, कला के लिए क्या त्याग नही करना चाहिए ?

सुन्दर—इज्ज़त का त्याग ?

रजनी—नहीं...इज्ज़त जायेगी इस झूठे डर का त्याग।

सुन्दर—शाबास रजनी। मुझे ऐसी ही शिष्या चाहिए। तुम जैसे...कला जैसे चार आत्मीय व्यक्ति मुझे सहारा दे तो कला के बल पर यह संसार जीत कर दिखा दूँ।

रजनी—फिर हैं तो हम ?...हमने तो हिम्मत नही हारी है न ? फिर आप क्यों हिम्मत हार रहे है ?

सुन्दर—हारता नही रजनी, मै हिम्मत नही हारता। मैं डरता हूँ, ...तुम लोगों की इज्जत के लिये डरता हूँ। यह कलाकार का जीवन... हमेशा रहस्यमय। जितना खुला है उतना ही छिपा हुआ है। दुनियादार ससार इस जीवन से परिचित नही। और इसी अपरिचय का यह परिणाम हो रहा है।

रजनी—दुनिया को हम अपना विश्वास-पात्र बनायेगे।

सुन्दर—बड़ा मुश्किल है !

रजनी—क्यों ?

सुन्दर—क्यों ! कैसे बताऊँ तुम्हें ?

रजनी—कुछ न बताइये। यह चर्चा भी न कीजिए। ऐसी चर्चा करते बैठने से काम में बाधा उपस्थित होती है।

सुन्दर—यह ठीक है...पर आज तक मुझ से ही भूल हुई। चर्चा करता बैठा...बहस की इन लोगों से, जिसके कारण इन्हें ठिठोली करने का मौका मिला...पर उस समय दूसरा उपाय न था। वह बहस न करता तो आज तुम जैसी शिष्याएँ न मिलतीं !...(**निश्वास छोड़ कर**) एक ही बात का दुःख होता है कि मुझे कोई शिष्य नहीं मिलता।

रजनी—अभी भी भेद है मन में ?

सुन्दर—भेद ! काहे का भेद ?

रजनी—स्त्री...पुरुष...भेद, जाति का अभिमान है मन में...पुरुष जाति का अभिमान। है न ? पुरुष शिष्य चाहिए। यही न ?

सुन्दर—क्षमा करो रजनी। (**एक ओर जाकर बैठता है। रजनी उठती है और बोर्ड पर के चित्र की ओर देखती रहती है। वह फिर से रजनी की ओर आता है**) रूठ गई रजनी !

रजनी—नहीं, मुझे दुःख हुआ। ऐसी भावना क्यों कर ? आप... आप भी ऐसा कहें। फिर लोगों को दोष क्यों दिया जाए ! लोग जो निन्दा करने लगते हैं वह इसी भावना के कारण। नहीं। यह वृत्ति आप मे न होनी चाहिए थी।...क्यों ?

सुन्दर—अब और कितना लज्जित करोगी मुझे ! तुम..कल्याणी...मन्दा और कुन्दा...तुम सभी मुझ पर अभिमान करती हो...मेरे लिए झगड़ती हो।...और मैं कहता हूँ शिष्य चाहिए। क्षमा करो रजनी मैं बहुत बड़ा अपराधी हूँ। इसीलिए तो मुझे यश नहीं मिलता। मन में से पहले यह स्त्री-पुरुष भेद जाना चाहिए। कृतघ्नता का पुरस्कार मिल रहा है मुझे। ...मिल गया...यश का रहस्य मुझे मिल गया अब। कितना अंधा था मैं। (**कल्याणी आती है**) आओ...कला (**रजनी से**) मुझे क्षमा कर दो। (**कल्याणी से**) मैं कहाँ गल्ती कर रहा था यह मुझे पता लग गया।

कल्याणी—कहाँ क्या गल्ती कर रहे थे ?

सुन्दर—कहीं भी गलती करूँ...कुछ भी ग़लती करूँ...वह भेद अब नहीं रहा...एक दम घुल कर साफ हो गया। जो करना स्वयं ब्रह्मा के लिए सम्भव न हो सका वह अब मैं प्रत्यक्ष कर दिखाता हूँ। **(वह एक ओर बैठ जाता है। कल्याणी रजनी की ओर देखती रहती है—रजनी केवल हल्के से हँसती है। कल्याणी सुन्दर की कुर्सी के पीछे खड़ी होकर कहती है)**

कल्याणी—ब्रह्मा को मात कीजिएगा?

सुन्दर—हाँ।

कल्याणी—कैसे?

सुन्दर—**(हँसता है)** अब देख लेना।

कल्याणी—**(क्षण भर ठहर कर)** चित्र चले गये न पेरिस?

सुन्दर—कभी के।

कल्याणी—स्वीकृत हो गए?

सुन्दर—कौन जाने। अब मुझे पर्वाह नहीं।

कल्याणी—तो भेजे क्यों?

सुन्दर—इसलिए कि उस समय में मूर्ख था।

कल्याणी—तो अब अकल आ गई है शायद! क्यों? किसने सिखाई।

सुन्दर—रजनी ने।

कल्याणी—यह बात है। **(कुछ देर सब चुप रहते है)** जाऊँ?

सुन्दर—मैंने तुम्हें नही बुलाया था।

कल्याणी—अच्छा?...फिर क्यों आई मैं?

सुन्दर—रजनी से पूछो, वह बतलाएगी...वह भली-भाँति जान गई है यह संसार की पहेली।

कल्याणी—क्यों रजनी?...(**रजनी चुप रहती है। कल्याणी उसके पास जाती है**) क्यों रजनी?

रजनी—क्यों लज्जित करते हो मुझे ! क्या अपराध हुआ है मुझ से ? मैंने इतना ही कहा...(**रुकती है**)।

कल्याणी—क्या कहा ?

रजनी—स्त्री-पुरुष...भेद...यह भेद भावना हमें मार रही है... हमें चित्रकारों को...(**उठकर एक ओर जाकर बैठ जाती है** ।)

कल्याणी—(**स्वगत**) स्त्री-पुरुष भेद !...यह भेद न रहने से इस दुनिया में रह ही क्या जायगा ?

रजनी—शून्य !

सुन्दर—शून्य ! कलाकार जिस नई सृष्टि का निर्माण करता है वह शून्य से ही । यह मै अभी तक नही जानता था । यह घटाना मुझे नही आता था । मै नही जानता था कि पुरुष में से स्त्री घटा देने पर शेष शून्य रह जाता है । हिसाब की यह समस्या हल होते ही संसार का रहस्य मेरी मुट्ठी मे आ गया, अब देखो, वह दैवी भावना नष्ट हो गई । अब मै दैत्य बन गया हूँ । इसी दैत्यपन के बूते पर मै सब देवताओं को जीतूँगा । समझी ?

रजनी—दैवी भावना मिट गई ।

कल्याणी—दैवी-भावना, प्रेम की, शुद्ध प्रेम की दैवी-भावना !

रजनी—नही...स्त्री-पुरुष के भेद की भावना । ईश्वर ने उत्पन्न की हुई भावना । वह भावना ईश्वर ने उत्पन्न की, मनुष्य ने उसे धारण किया और वहीं मनुष्य का अधःपतन हुआ । ईश्वर की भावना मनुष्य नही समझ पाया । मनुष्य अपने को देवता समझने लगा, पर वह देवता न था...देवता बन भी नही पाया था...इसलिए उनका अधःपतन हो गया ।

सुन्दर—बिल्कुल ठीक । वह देवता की बराबरी करने लगा इसी लिये उसका अधःपतन हुआ । मनुष्य देवता से भी बड़ा है । अपना स्थान छोड़कर वह नीचे उतरा । उसे अपना बड़प्पन दिखाना चाहिए था । देवताओं की हड्डी नरम करने वाला दैत्य बनना चाहिए था...

रजनी— नहीं...।

सुन्दर—नहीं, फिर क्या गुरु महाराज ?

कल्याणी—अब यह समाप्त भी कीजियेगा ? कैसा विषय चलाया है यह आज ?

सुन्दर—आज यह बड़े महत्त्व का विषय चल रहा है। समझीं कला ? सारा संसार अपनी ओर देखने लगा है । मेरी ओर...तुम्हारी ओर... और इसकी ओर !...और बातें करने लगा है...मीठी-मीठी बातें । उसे उसे मीठे से उत्तर देना चाहिए न ? उसी के लिए यह चर्चा चल रही है !

कल्याणी—रजनी, यह और क्या पागलपन पैदा कर दिया है इनके मस्तिष्क मे ? (**रजनी हँसती है**) हँसती क्या हो ? क्या मेरे जीवन को मिटाने का तुम्हारा इरादा है ?

सुन्दर—और मेरा जीवन ?

कल्याणी—मेरा जीवन वही तुम्हारा जीवन है...।

सुन्दर—यह केवल कहने की बातें हैं। बिना समझे बोलना है, कहीं किसी कवि ने लिखी हुई पत्तियाँ कभी याद कर ली थीं उन्हीं को अब दुहरा रही हो।

• **कल्याणी**—यह कह क्या रहे हैं आप ! मैंने पिता की भी परवाह नहीं की, अमीरी को ठुकराया, लखपति की गृहणी बनने का सुअवसर छोड़ कर जो तुम्हारे मुँह की ओर ताकती रही हूँ, वह क्या शून्य की यह बातें सुनने के लिए ?

सुन्दर—यदि तुम मुझे चाहती हो तो तुम्हें अब ऐसी बातें सुननी पड़ेंगी। यह पागलपन अब मेरी नस नस में समा-गया है...ठीक तक्षक के विष की भाँति। यह विष मुझे पचाना है...मुझे नीलकंठ बनना है। किसी को काटूँ तो उस पर भी इस विष का प्रभाव होगा, मैं इतना जहरीला बन गया हूँ। ऐसा आदमी स्वीकार है ?

कल्याणी—हाँ ।

सुन्दर—'हाँ' क्या ? यह व्रत इतना आसान नहीं। बड़ा कठिन है ...कला से भी कठिन है।

कल्याणी—यही अब देखना है !

रजनी—अब मै जाती हूँ।

सुन्दर—अब तुम घबरा गई ? गुरुदेव ही घबरा जायें तो शिष्य का क्या होगा ?

कल्याणी—वह गुरु का भी गुरु बन जायगा।

सुन्दर—बिल्कुल ठीक कहा। यह मेरी शिष्या, मेरी गुरु बन गई। अब मैं उसका शिष्य हूँ...अब मुझे इसका गुरु बनना है। अच्छा, बैठो वहाँ। (**उसे कोच पर बैठा कर स्वयं उसके निकट बैठता है**) वह बाबूराव ढूँढ रहा है न तुम्हें ? उसे यहाँ आने दो और देखने दो और परेशान हो लेने दो। वह आॅथर...(**जोर से हँसता है**) लेखनी के यह मुर्गे...कूड़ा-करकट लिखते रहते है। चोंच पैरों से खोदते रहते है कूडा। ...उससे कहो, लाल गुदड़ी मे ही मिलता है। एक बार ढूँढ देखो यह गुदड़ी। (**बलवन्तराव आता है**) आइए आर्टिस्ट साहब, आपकी पत्नी कहाँ खो गई ?

बलवन्त—बिल्कुल यही अचूक प्रश्न किया तुमने !

सुन्दर—मै जानता था। मेरी बहन वह...मुझ जैसी ही घनचक्कर.। सोचा, भटक रही होगी कहीं और तुम उसे ढूँढ रहे होगे।

बलवन्त—तुमने ठीक ही कहा। पर अब तुम ही बताओ, क्या यह योग्य है औरतों के लिए ? क्या औरत जात को यह शोभा देता है ?

सुन्दर—मै कैसे कहूँ। मै औरत तो हूँ नहीं। पुरुषों सम्बन्धी प्रश्न होता तो मै उत्तर देता कि पुरुष को सब कुछ शोभा देता है। औरतो के बारे में इन औरतों से ही पूछो।

कल्याणी—जो पुरुषों को शोभा देता है वह स्त्रियों को क्यों न शोभा दे ?

बलवन्त—सुन लीजिए। और आप कह रही हैं। फिर भी अभी

विवाह नही हुआ है। और रजनी !...ना...ना यह ठीक नहीं। कितना सट कर बैठी हो। विवाहित स्त्रियों को यह शोभा नहीं देता। हम लोग घर के आदमी है इसलिए, दूसरा कोई होता तो क्या कहता ?

रजनी—कहता कुछ भी।...मुझे इसकी परवाह नहीं। अपना मन शुद्ध हो तो कोई संसार के कहने की क्यों परवाह करे।

बलवन्त—आज कल तुम औरतों की ज़बान बहुत चलने लगी है।

सुन्दर—अभी हाल ही मे तो मुँह पर का ताला खुला है न...!

बलवन्त—अभी पूरा कहाँ खुला है ?

सुन्दर—इतने में ही इतनी बकबक। बड़ी मजेदार बात है, क्यों ? फिर से यह ताले बन्द कर देने चाहिये। क्यों...!

बलवन्त—मेरी परीक्षा ले रहे हो पर मै धोखे में आने वाला नहीं।

कल्याणी—अच्छा ? फिर इतने मतवाले क्यों हो रहे है बिचारी कही इधर-उधर चली गई तो आपकी इतनी जान क्यो सूख रही है।

बलवन्त—पति का दुःख पति ही जानता है।

सुन्दर—सुन लो कला, इसीलिए मै कहता हूँ...(**रुकता है**)।

बलवन्त—क्या कहते हो !

सुन्दर—अभी समय नही आया वह बताने का।

बलवन्त—प्रत्येक व्यक्ति पहेलियों में बातें कर रहा है।... (**मंदा कुन्दा आती हैं**) अब ये छोकरियाँ भी तत्वज्ञान की बातें करने लगी है।

मंदा—सुन लिया मास्टर साहब।

कुन्दा—ठहरो, पहले मै बताती हूँ।

मंदा—नही, पहले मै बताऊँगी...(**दोनों बार-बार 'पहले मैं बताऊंगी' कहती हैं। कल्याणी उन्हें दूर करती** है)।

कल्याणी—सुनो...तुम दोनों एक साथ कहो...।

मंदा—यह कैसे होगा ? शब्द कैसे मेल खायेगे ?

सुन्दर—न मेल खाने दो। हमें तो सुनाई देगा न ! हाँ कहो।

मंदा—पिता जी कहते हैं तुम्हारे मास्टर साहब में इन्सानियत नहीं है ।

कुंदा—पिता जी कहते हैं तुम्हारा मास्टर सच्चा इन्सान है ।

कल्याणी—समझे, बलवन्तराव ?

बलवन्त—हाँ समझा । (**बड़बड़ाता है**) ।

सुन्दर—क्या समझे !

बलवन्त—इसके पिता जी कहते हैं कि सच्चे मास्टर को तुम्हारी इन्सानियत नहीं । क्यों री, यही न । (**दोनों हँसती हैं**) शायद गलती की...इतना निश्चित है कि कुछ इन्सानियत के बारे में था ।

रजनी—दो आदमी एक साथ बोलें तो सुनने वाला इतना गड़बड़ा जाता है फिर सारा शहर जब एक दम बोलने लगता है तब कथन का विपर्याय हुआ इसका गिला कोई क्यों करे ।

सुन्दर—मनुष्यता ! मनुष्यता !

कुंदा—यह मनुष्यता क्या होती है मास्टर साहब ?

सुन्दर—मैं यही सोच रहा हूँ ।

मंदा—सच्चा इन्सान कैसा होता है, और झूठा कैसा होता है मास्टर साहब ?

सुन्दर—ठहरो ।...तुम आर्टिस्ट हो न बलवन्तराव !

बलवन्त—आर्टिस्ट कहाँ । एक पुराने जमाने का चित्रकार हूँ बस !

सुन्दर—ठीक-ठीक...तो पुराने और नए जमानेकी कलाएँ कैसे मिलती हैं । मेल खाती हैं ।...देखना चाहिए । एक चित्र तो बनाओ मनुष्य का । (**बलवन्तराव हँसता है**) हँसो मत । यह बड़ी कठिन कल्पना है । मेरा सिर चकरा गया है इस कल्पना से । मैं भी प्रयत्न करके देखता हूँ । लो, यह लो बोर्ड, और मंदा जब तक हम चित्र बनाते हैं तब तक तुम एक अच्छा सा गीत गाओ (**दोनों चित्र बनाने लगते हैं । दोनों लड़कियाँ उनके पीछे खड़ी होकर देखती हैं । मंदा और कुंदा देखते-देखते गाती हैं**) ।

बलवन्त—(**चित्र दिखाता हुआ**) यह देखो !

सुन्दर—जरा ठहरो...हाँ मंदा रुको नही। (**देखने के लिए आते हुए बलवन्तराव को दूर ठेलते हुए**) ना, ना अभी यह चित्र न देखो।

(**जब वह चित्र बना रहा होता है तब कल्याणी और रजनी परस्पर इशारा करके हँसती हैं। बलवन्तराव परेशानी में एक कुर्सी पर बैठता है।**)

सुन्दर—हाँ, अब देखो।

बलवन्त—तुम्ही देखो !...

सुन्दर—(**उसके पास जाकर**) रूठ गए ?

बलवन्त—अब समझा। तुम्हारा इरादा इन औरतों के सामने मेरी फजीहत करने का है।

सुन्दर—ऊँ हुँ, फजीहत हुई तो मेरी ही होगी।

बलवन्त—यह मुझ से कह रहे हो !... ये हैं तुम्हारी शिष्याएँ... तुम्हारी अनुयायिनी...सब तुम्हारी सिखाई हुई, भूल हुई, मैं पोछ डालता हूँ यह चित्र ! (**उठता है, राह में सुन्दर उसे रोक कर अपने चित्र के सामने ले जाकर खड़ा करता है**) यह क्या ? यह मनुष्य है ? (**हँसने लगता है**) यह मनुष्य है ? फिर हम लोग कौन हैं ?

सुन्दर—हम लोग...यानी तुम और मैं। इन औरतों को न लाओ इस झमेले मे !

बलवन्त—यानी ?

सुन्दर—(**उसे उसके चित्र के सामने खींच कर**) यह तुम्हारा मनुष्य है न ? फिर इसका इस मनुष्यता से क्या सम्बन्ध है ? मनुष्य यानी पुरुष ! क्यों ?

बलवन्त—पुरुष ?...क्या कहा मनुष्य यानि पुरुष ?

रजनी—और हम लोग शायद मनुष्य नहीं हैं ?

बलवन्त—(**जरा सम्भल कर**) पर यह क्या ? पुरुष भी नहीं स्त्री भी नहीं, यही नहीं, मनुष्य भी नही, सींग क्यों है इस मनुष्य को ?

सुन्दर—चुभोने के लिए। दूसरों का पेट फाड़ने के लिए !

बलवन्त—यह तो विलायती शैतान है ।

सुन्दर—विलायती नही, देसी है ।...बिल्कुल आर्यावर्ती मनुष्य है । यह आर्यावर्ती मनुष्य विलायत गया, बाइबिल में घुसा, नन्दन बन में उत्पात मचा कर जिसने मनुष्यता का पौरुष बनाया, वही है यह आदम ! यह आदि देवता का...महा देवता का चित्र है !

बलवन्त—महादेव तो मनुष्य नही । यह विचित्र रूप कोई देख ले तो...(**विश्वासराव आता है**) आइये विश्वासराव, देखिये यह सुन्दर का मनुष्य देखिये । इसकी मनुष्यता में स्त्री शामिल नही ।

विश्वास—स्त्रियों में मनुष्यता होती कहाँ है !

रजनी—सुनो कला, यह कलाकार कह रहा है । और ये हमारे हिमायती है !

विश्वास—अजी ये चित्र अभी रहने दीजिए... (**रजनी से**) यहाँ हो तुम ? ठीक है । वह बिचारा बाबूराव वहाँ घायल होकर पड़ा है ।...

रजनी—क्या हुआ ?

विश्वास—कुछ खास नही, मामूली जखम है ।

रजनी—जखम ? कैसी ! कहाँ हुई है ?

विश्वास—(**सीने को हाथ लगा कर**) यहाँ !

रजनी—(**घबरा कर**) हाय, राम !

विश्वास—नजर आने वाली नहीं... जखम अन्दर हुई है, मामूली, बिल्कुल मामूली । मोटर से नहीं...ट्राम से नही, बस से नही...चाकू छुरी से भी नही । (**रुकता है**) ।

रजनी—तो काहे से ?

विश्वास—कर्म से !

रजनी—कैसे कर्म से ?

विश्वास—तुम्हारे कर्म से !...शरम नही आती ? पराये आदमी

के साथ अकेली घूमती हो...पति को छोड़े फिरती हो। वह बिचारा तड़प रहा है। उस ऑथर ने बताया...।

रजनी—अच्छा !

बलवन्त—अच्छा, कहती हो। उसने क्या गलती की ! वह ऑथर है। दुनिया को देख सकता है। वह जैसा दुनिया को देखता है वैसा कहता है...।

रजनी—उसे जैसा दिखाई देता है वैसा वह कहता है। पर उसे जो दिखाई देता है क्या वह ठीक होता है ?

कल्याणी—बोलिए न ? किसके देखने पर विश्वास किया जाय ? कैमरा के या आर्टिस्ट के ?

विश्वास—देखो, इस कदर शोर न मचाओ। शोर मचाने से बात का समर्थन नही होता। तुम लोग औरते हो। अपने पतियों के पास रहना तुम्हारा कर्तव्य है। तुम क्यो कर इन कलाओं में पड़ती हो !

बलवन्त—कला की ओट चाहे जिस व्यक्ति के साथ मटर गश्ती करने के लिए। इसी लिए मैने एक सीधी सी पत्नी स्वीकार की।

विश्वास—पर वह भी है कहाँ तुम्हारे कहने में ? वह घूम रही है उधर एक कलाकार के साथ।

बलवन्त—किसके साथ ?

विश्वास—बाबूराव के साथ।

बलवन्त—बाबूराव के साथ।...बाबूराव के साथ। किसने कहा ! और वह कलाकार कहाँ है ?

विश्वास—ऑथर ने कहा। वह गाता है न ? उसका गाना सुनती बैठी होगी कहीं। तब तक उसकी यह पत्नी यहाँ चित्र बना ही रही है ! कहते हैं मनुष्य !

सुन्दर—यह उसने बनाया हुआ चित्र नही है।

विश्वास—बनाया न होगा...देखती बैठी होगी। बात एक ही है।

अच्छा ही हुआ जो मेरी पत्नियाँ मर गईं। यह जंजाल तो नहीं है गले में।

मंदा—सुन लिया मास्टर साहब—

विश्वास—और ये जरा सी छोकरियाँ...ये भी यही है ?

कल्याणी—कुछ हृदय भी है आपके पास ? या दृष्टि में केवल पाप ही पाप भरा हुआ है ? यह कैसा स्वभाव है ? कोई कहीं न जाय, किसी से बात न करे क्या यही आपका कहना है ?

विश्वास—कोई, नही...स्त्रियाँ। 'किसी से' नहीं पुरुषों से, समझीं ?

नट—(**प्रवेश करके**) स्त्री जाति सब बेईमान हैं।

सुन्दर—है, हैं, ठहरो, तुम में एकदम यह टीस कैसे उठी ?

नट—क्या करूँ जी ! हृदय फटा जा रहा है। दूसरे का दुःख अपना दुःख है... दूसरे के लिए, अपने मित्र के लिए...अपने गुरुदेव के लिए क्या मुझे व्याकुल न होना चाहिए ?

रजनी—आपका गुरुदेव कौन है ?

नट—तुम।

रजनी—मैं ?

नट—ठहरो...सुनो, तुम्हीं इस सारे दुःख की जड़ हो ! मेरा मित्र... मेरा गुरु...मेरा बाबूराव उधर छटपटा रहा है ...।

विश्वास—रमणी को साथ लिए...।

नट—सुनो, पहले सुन लो...अच्छी तरह से सुन लो...।

बलवन्त—रमणी को साथ लिए....।

नट—कह रहा हूँ कि सुन लो। और उसी समय यह यहाँ...।

बलवन्त—तुम से किसने कहा ?

नट—कवि ने...उस अतीन्द्रिय दृष्टि वाले ने संसार पर नजर डाली। उस दृष्टि चक्र में उसने देखा...(**कुन्दा और मंदा हँसती है**)। पगली लड़कियों, हँसो मत।...यह हँसने की बात नही। खून के आँसू रो रहा है उसका कोमल हृदय। उस रक्त के फव्वारे इस संसार के मार्ग पर

गिर पड़े हैं। उन फव्वारों की वर्षा से संसार जलने लगा है। सुनो कुंदा...

नट—हाँ, ठहरो...क्या कह रहा था मै ?

सुन्दर—कुछ मत कहो...चले जाओ यहां से। कीचड़ उछाल रहा है हर कोई। कैसी है यह दुनिया !

नट—सुनो, आगे सुनो...।

सुन्दर—निकलो यहाँ से, नही तो धक्के देकर बाहर निकाल दूँगा।

नट—हर, हर ! हे स्वर्ग के देवताओ !

कुंदा—इनकी पुकार का जबाब दो ! **(सब हँसते हैं...नट घबराता है, इधर-उधर देखता है और 'प्रतिशोध' प्रतिशोध...प्रतिशोध, कहता हुआ चला जाता है)**।

कुंदा—ये एक-एक कैसे पागल है ?

मन्दा—और इन लोगों की तारीफ समाचार-पत्रों में आती है।

विश्वास—चुप रहो। बड़े आदमियों की बातों मे छोटो को मुँह नही डालना चाहिए। समझे सुन्दर...**(रुकता है)**

सुन्दर—क्या ?

विश्वास—मेरे विचार मे तुम यह क्लास बन्द कर दो।

सुन्दर—और जीविका कैसे चलाऊँ ?

विश्वास—जरा आदमियो जैसे चित्र बनाओ। **(बोर्ड की ओर इशारा करके)** इस तरह का बाहियातपन छोड़ दो। यह तुम्हारा बहनोई दयनीय सूरत बना कर बैठा है। क्यों ?...क्या कारण है ? उस कारण की उत्पत्ति कहाँ से हुई ? पहले इस बात का विचार करो और यह रासक्रीड़ा बन्द करो भाई।

सुन्दर—उपदेश समाप्त हो गया ?...जाइए, नमस्कार !...

विश्वास—अरे लेकिन... ।

सुन्दर—नमस्कार ! **(बाबूराव और रमणी आते हैं)**

विश्वास—आइये बाबूराव...यह देखिये आपकी...

बलवन्त—(**क्रोध से**) कहाँ गईं थी इसके साथ ?

बाबूराव—(**रजनी से**) यहाँ क्या कर रही थी तुम ?

रजनी—अकेली नहीं थी मै यहाँ ।

बलवन्त—(**रमणी से**) तुम्हारे लिये आज से यह घर बन्द...

रमणी—मेरे भाई का घर ?

बाबूराव—कैसा भाई ? कोई किसी का भाई नही और कोई किसी की बहन नहीं । यह भी रिश्ता जोड़ती है भाई का...और गुरु का... और न जाने काहे का !...चोर साले...हरामखोर ! कला के नाम पर अंधेर मचा रक्खा है । नंगी अधनगी इकट्ठी करने की आदत लग गई है और फिर भला ऐसे कामों से नीति कैसे बनी रह सकती है ? बहुत हुई यह कला ! आज से यह कला बन्द ! समझी ! चित्र नहीं बनाने होगे । न नगे और न वसनधारी । सब बन्द ! चलो ।

रजनी—मै नही आती ।

बलवन्त—तुम भी चलो !

रमणी—मुझे अपने दादा से बाते करनी है ।

बलवन्त—दादा गया जहन्नुम मे । चलो निकलो ! नही तो—नही तो—और तुम भी छोकरियों अपने-अपने घर जाओ ।

मन्दा—आप कौन होते है हमसे कहने वाले ?

कुन्दा—हम जायेगे या रहेगे, जो चाहेगे करेगे !

बाबूराव—(**रजनी से**) देखा ? यह है तुम्हारी शिक्षा । तुम्हारा चाल-चलन देखकर ये छोकरियाँ भी बेमुरव्वत बन गई है । चलो, चल रही हो या नही ?

रजनी—नही आती ।

विश्वास—यह ठीक नही । समझी ! इसका बहुत बुरा परिणाम होगा ।

रजनी—जो होना है वह एक बार हो जाने दो । हममे से कोई भी नही जायगा ।...जाइये ।

बाबूराव—यह बात है ?

बलवन्त—यह बात है ?

विश्वास—अब देखना...

बाबूराव—चलिये विश्वासराव...चलिये बलवन्तराव इस बात का फैसला अब करना ही होगा !—सुना सुन्दर, तुम्हें मुँह दिखाने के लिए जगह न रहेगी। चलिये। देखना अब कैसे इनको सीधा करता हूँ। **(तीनों जाते हैं)**।

सुन्दर—(**एकदम बैठ जाता है**) नहीं...नहीं चाहिये यह जीवन।

कल्याणी—यह आप कह रहे है ?

सुन्दर—कितना सहन करूँ ! सीमा होती है सहनशीलता की। यह मनुष्य का चमड़ा कितना सहन करेगा ?

रजनी—पर हम तो तैयार है न ?

सुन्दर—झूठ है यह। जितना दिखाई देता है उतना यह आसान नहीं है। बहुत हुआ। जी चाहता है...।

कल्याणी—कुछ नही चाहता। जो होना हो वह हो जाने दो। किसी की कुछ परवाह न करो।

सुन्दर—एक ही कारण...स्त्री-पुरुष भेद। किस चांडाल ने यह भेद निर्माण किया ?

रमणी—दादा, यह तुम कह रहे हो ? तुम सा धैर्यवान् व्यक्ति...

सुन्दर— ......

(पर्दा गिरता है)

तीसरा अंक

[सुन्दरराव का स्टूडियो...पर्दा उठते समय सामान झाड़ता हुआ कृष्णा भीतर जाता है। बाहरी दरवाज़े से रजनी आती है और अन्दर चली जाती है...क्षण-भर वहाँ कोई भी नहीं होता। बाद में कल्याणी आती है। स्टूडियो में किसी को न पाकर भीतरी दरवाज़े में झाँक कर' रमणी, कह कर पुकारती हैं। ...अन्दर कोई भी उत्तर नहीं देता। अन्दर जाने का विचार करती हुई फिर लौट पड़ती है और बाहर जाने लगती है तभी बाहर से आती हुई रमणी उसे दरवाजे में मिलती है। रमणी के हाथ में भरा हुआ थैला है जिसमें से बाहर झाँकती हुई सब्जी दिखाई पड़ रही है]

रमणी—कब आई ?

कल्याणी—अभी-अभी। तुम्हें आवाजें दी पर अन्दर से किसी ने उत्तर नही दिया। शायद कृष्णा भी घर मे नहीं है। इस प्रकार घर खुला छोड़ कर चले जाते हो, चोरी हो जाय तो...।

रमणी—काहे की चोरी होगी ?

कल्यणी—क्यों ? क्या यहाँ के ये चित्र कम कीमती है ?

रमणी—पर इतने बड़े ये चित्र कोई चोर क्यों ले जाने लगा ? और ऐसी चोरी किसे पच सकती है ! रसद इस प्रकार यों रोज लानी पड़ती है। कपड़ा-लत्ता भी जरूरत के हिसाब से ही आता है। चोर को क्या मिलेगा इस सुन्दरता के राज्य में ?... ठहरो हँ, यह अन्दर रख आती हूँ।

कल्याणी...मैं भी आती हूँ। **(दोनों अन्दर जाती हैं)**

(विश्वासराव और बलवन्तराव आते हैं, ऐसा लगता है मानो विश्वासराव बलवन्तराव को जबर्दस्ती खींच कर ला रहा है)

विश्वास...आओ...यहाँ बैठो, तुम नौजवान लोग ऐसे कब तक रूठे रहोगे ? कहो, मायके में रहना बहुत हुआ और लिवा जाओ। मायके में आई हुई पत्नी बिना बुलाये पति के यहाँ न जायगी। यह पुराना दस्तूर है, इसलिये बुलावा भेजना ही चाहिये। एक ही शहर में हो इसलिये स्वयं जाना सब से अच्छा। क्यों ?

बलवन्त...बड़े आदमी के शब्द का अनादर न करना चाहिये इसलिये मैं आया, पर सच कहता हूँ विश्वासराव कि दूसरी बार उसका मुँह देखने की भी मेरी इच्छा नही। बाबूराव ने भी यही तय किया है। मगरूरता की भी कोई हद होती है या नही ?

विश्वास...ऐसा चलता ही रहता है। अरे भाई यह प्रेम कलह है। ...झगड़े बिना प्रेम मे मजा नहीं आता। अब जितना झगड़ना था वह हो चुका। प्रश्न तो अब यह है कि गम कौन खाय ?

बलवन्त—हाँ !

विश्वास—ठीक है। मान दोनों को है...वैसे देखा जाय तो मस्ती भी दोनों में है।

बलवन्त—ना, ना, यह मुझे स्वीकार नही।

विश्वास—अस्वीकार करने से कोई फायदा नहीं...मस्ती दोनों में है ...जरा ठहरो, पहले सुन लो, उन औरतों के सामने मैं ऐसा नहीं कहूँगा। ये अपनी वैयक्तिक बातें हैं। इस वैयक्तिक बातचीत में सच बातें स्वीकार करनी चाहिए, समझे ! इसलिए मैं आया हूँ। तुम दोनों में से किसी को भी झुकने की आवश्यकता नहीं। मैं सारा फैसला कर देता हूँ। बाबूराव भी मिलना चाहिए था...पर सोचा, पहले कम से कम यह एक प्रकरण मिट जाय।

बलवन्त—मैं आप से फिर कहे देता हूँ कि मैं अपनी मर्जी से यहाँ नहीं आया हूँ। आप जबर्दस्ती मुझे यहाँ लाए हैं। आप बड़े है इसलिए मैंने

आपका कहना माना और यहाँ आया। बस, अब आपका बड़प्पन समाप्त हुआ, अब मैं अपना मुखतार हूँ। इसके पश्चात् मैं आपकी एक न सुनूँगा।...

विश्वास—अच्छा। अच्छा! आगे की आगे देखी जायगी। मेरे शब्द के लिए तुम आए...मेरी इज्जत रख ली.. इसी में मुझे आनन्द है। अरे हमारी गृहस्थी बैठ गई इसलिए हम चाहते हैं कि कम से कम तुम्हारी गृहस्थी अच्छी तरह चलती रहे। वह सुन्दर एक मूर्ख व्यक्ति है। उसके कारण तुह क्यों अपने आपको परेशान कर लेते हो ?

बलवन्त—**(इधर-उधर देखकर)** शायद वह यहाँ है नहीं। सभी उसके कारण परेशान हैं। वह तो है फकीर और हम हैं गृहस्थी वाले... पर उसकी मूर्खता के कारण हमारी गृहस्थी का सत्यानाश हुआ जारहा है। फिर भला परेशान न हो तो करे क्या ?

विश्वास—अपने को परेशान करने से तो उसे दंड नहीं मिलता। उसका सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा है। अनुयायी बढ़ रहे हैं। गोकुल बना रखा है भाई ने। अब तुम लोग यदि चुप बैठे रहे तो नुकसान किसका होगा! इसलिए मै कहता हूँ...**(अन्दर कुछ गिरने की आवाज आती है और दोनों घबराकर खड़े हो जाते हैं)** क्या हुआ ?

बलवन्त—क्या हुआ ? **(कृष्णा अन्दर से आता है और उनके सामने से होकर बाहर जाने लगता है। उसके हाथ में एक फ्रेम है)** तो तुम हो !

कृष्णा— **(बाहर जाते-जाते दरवाजे के पास ठहर कर)** किसे कह रहे हो।

विश्वास—तुम्हें...तुम्हें! तुम्हें दिखाई नही देता हम यहाँ हैं! सीधे चले जा रहे हो हमारे सामने से। जैसे कोई लाटसाहब का बच्चे हो।

कृष्णा—हाँ, हाँ! अब मै वह नही रहा जो पहले था। बहुत बड़ा आदमी हो गया हूँ। समझे!

विश्वास—देख लिया मुँह बड़े आदमी का। अच्छा तुम्हारा मालिक कहाँ गया है ?

कृष्णा—कैसा मालिक ! मैं ही यहाँ का मालिक हूँ। क्या रोज-रोज बतलाऊँ ? (**कह कर चला जाता है**)

बलवन्त—जैसा मालिक है वैसा ही नौकर है। जब मालिक मूर्ख होता है तब नौकर इसी प्रकार मिजाज दिखाने लगता है।...शायद यहाँ कोई है नहीं। मालूम होता है सभी बाहर गए हुए हैं। अब कब तक बैठा जाए यहाँ ? (**बाबूराव आता है**) आइए...आप भी आ गए !

बाबूराव—नही...मै नही आया। पचास बार इस बुड्ढे ने मेरा दिमाग चाटा। पत्नी, पत्नी ! केवल पत्नी के लिए सिर झुकाये बुलावे भेजना मुझे पसन्द नही, पर सोचा उमर मे बड़ा है, बुला रहा है, इज्जत रखनी चाहिए।

विश्वास—खूब ! जैसे मेरे ही कहने से आये हैं आप ! और आप स्वयं औरतों के लिए जैसे लालायित हैं ही नही !

बाबूराव—कौन कहता है कि मै हूँ ?

बलवन्त—हें ! हें ! कौन कहता है यह ?

विश्वास—(**जोर से हँसते हुए**) अच्छा भाई। छोड़ो, समझ लो मैं ही कहता हूँ। किसी तरह एक बार तुम्हारे घर बस जाने दो।

बाबूराव—घर बसने दो। घर बसाने के लिए क्या वही पत्नी चाहिए ? अभी मुझ में एक दर्जन औरतों से विवाह करने की हिम्मत है...।

बलवन्त—यह ठीक है, एक के भरोसे इतना ऐश हो रहा था... दर्जन से बारह गुना होगा।

बाबूराव—और तुम ? तुम्हारी तो नहीं कमा कर लाती। इसीलिए ऐसा कह रहे हो।

विश्वास—अब चुप भी रहोगे। नहीं तो अभी आजाएगी कोई। अब यों बैठो तो सही...बैठो...(**उन्हें जबर्दस्ती बैठाता है और स्वयं**

बैठता है। तभी कल्याणी अन्दर से आकर सीधी बाहरी दरवाजे की ओर जाती है) अरी ओ ! ठहरो तो, इतनी देर अन्दर ही थीं शायद ! क्या कर रही थीं ? अकेली थीं या...इतनी देर से हम लोग बातें कर रहे हैं वह सुना नहीं शायद ?

कल्याणी—(**दरवाजे के पास ठिठक कर, पीछे देख कर**) बस, कह लिया ! अच्छा...अब मैं जाती हूँ। **(एकदम जाती है)**

बाबूराव—कैसी विचित्र लड़की है। उत्तर भी नहीं दिया !

बलवन्त—हम लोग यहाँ बैठे हैं, बातें कर रहे है, अन्दर नौकर था, यह थी, पर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया हमारी ओर ! प्रत्येक व्यक्ति आता है और सीधा चला जाता है। यह सब सदेहजनक नहीं लगता आप लोग को ?

बाबूराव—और भी हैं कोई अन्दर ! आइये देखें तो सही।

(तीनों अन्दर झाँकने लगते हैं तभी बाहर से सुन्दर प्रवेश करता है)

सुन्दर—कौन है ? **(तीनों चौंक कर पीछे मुड़ते है)** वाह ! विश्वास-राव, यह क्या हो रहा है।...मेरी अनुपस्थिति मे मेरे घर मे घुसकर...

विश्वास—(जोर-जोर से हँसते हुए उसके सामने आकर) वाह, सुन्तरराव इतनी देर हमने तुम्हारा घर सम्भाला और... ।

सुन्दर—मेरा घर सम्भालने की किसी को जरूरत नहीं। और आप लोग, जी, आप यहाँ क्या कर रहे थे ?

बलवन्त—लीजिए, सुनिए विश्वासराव।

सुन्दर—सुनना क्या है ? आपका यहाँ काम क्या है ?

बाबूराव—काम ? सुन्दरराव, मेरी पत्नी कहाँ है ?

बलवन्त—सुन्दरराव, मेरी पत्नी यहाँ है। वह कब वापिस आएगी अपने घर ?

(सुन्दरराव जोर-जोर से हँसता हुआ एक कोच पर आड़ा लेटता है)

बाबूराव—हँसने की क्या बात है ? मेरे प्रश्न का साफ-साफ उत्तर दो। कहाँ है मेरी पत्नी ?

सुन्दर—स्वयं पति ही अपनी पत्नी का ठौर ठिकाना दूसरे से पूछने लगें तो उसे कुछ उत्तर न देना ही ठीक है।

विश्वास—(एक कुर्सी खींच कर सुन्दरराव के पास बैठते हुए) अब यों देखो सुन्दर...।

सुन्दर—(तड़ाक से उठ कर) बस कीजिए, मुझ से किसी का कोई सम्बन्ध नही। प्रत्येक ने अपनी जिम्मेवारी स्वयं देखनी चाहिए। इन्ही लोगों ने तो उन्हें निकाल दिया, चाहे जहाँ जाने के लिए कहा, बेचारी औरतें, आज्ञाधारक होती हैं न औरतें!...उन्होंने इनकी आज्ञा का पालन किया।

बलवन्त—अब फिर से हम आज्ञा दे रहे हैं।

सुन्दर—किसे?

बलवन्त
बाबूराव } उन्हें...अपनी पत्नियों को।

सुन्दर—तो दीजिए उन्हें आज्ञा। मुझे क्यों बता रहे हैं?

विश्वास—देखो सुन्दर, ऐसी टेढी बातें न करो, विपत्ति पड़ने पर मनुष्य घबरा जाता है, ऐसे समय बुद्धिमान् आदमी को उसे ठीक रास्ते पर लाना चाहिए। पति पत्नी के बीच इस प्रकार का रोड़ा अटकाना ठीक नही, कहाँ है वे, मैं कहता हूँ उनसे। यही रहती है न वे! यह तुम्हें शोभा नही देता। एक तुम्हारी बहन है...पर दूसरी से तुम्हारा क्या सम्बन्ध! उसे क्यों यहाँ रहने दिया?

सुन्दर—आप यह कैसे कहते हैं कि वे यहाँ हैं!

बाबूराव
बलवन्त } हमें पक्का पता है।

सुन्दर—शायद इसीलिए अन्दर झाँककर देख रहे थे! यह चोरी क्यों? मेरे यहाँ होते यदि आप आते, सीधी तरह मुझ से पूछते तो मैं जो बताना था वह बताता। मै घर में नही हूँ यह देख कर चोर की भाँति घर में घुसे...।

विश्वास—अच्छा, अच्छा हम से भूल हुई ।

सुन्दर—तो भोगिए इस भूल का फल । पहले मेरे घर से बाहर निकलिये ।

बाबूराव—जरा सुन तो लो ।

सुन्दर—एक शब्द भी नही सुनूंगा मैं इस समय ! फिर आइये, फिर से पूछिये । जब में घर पर हूँगा तब आइए । समझे ! नमस्कार । **(अँगुली से दरवाजे की ओर संकेत करता है तीनों बिना कुछ बोले चुपचाप चले जाते हैं)** कृष्णा ! ओ कृष्णा ! **(झुँझला कर जोर से)** कृष्णा ! कहाँ गया यह चोर **(रमणी और रजनी निकल कर बाहर आती हैं)**

रमणी—क्या है दादा !

सुन्दर—तुम अन्दर थीं ! **(रजनी से)** और तुम भी !

रजनी—**(हँसकर)** जी, मैं भी । और कल्याणी भी ।

सुन्दर—वह कहाँ है । **(भीतरी दरवाजे की ओर जाता है)**

रजनी—**(हँसकर)** वह अन्दर छिपी नही बैठी है । आपको ढूंढने गई है । यह तीनों का गुट जो आया था ।

सुन्दर—उन्हीं के सामने से गई ? कुछ कहा सुनी तो नही हुई ?

रमणी—वह एक शब्द भी नहीं बोली । और सीधी निकल गई उनके सामने से ।

सुन्दर—**(एकदम कुर्सी पर बैठकर)** मुझे क्यों हो यह परेशानी तुम लोगों के कारण ? चली जाओ तुम अपने-अपने पतियों के पास । **(दोनों हँसती हैं)** तुम्हें हँसी आती है । पर लोगों के ताने मुझे सहने पड़ते हैं । और वह, वह भी मेरे पीछे यों ही हाथ धोकर लगी है । तुम्हारी विडम्बना प्रत्यक्ष देख रही है फिर भी मेरे पीछे लगी है । घर में सब कुछ पर्याप्त है पर क्यों वह दरिद्रता के लिए लालायित हो रही है ? **(दोनों हँसती हैं । सुन्दर उठकर उनके सामने खड़ा हो जाता है)** अब भी हँस रही हो ! वे तुम्हारे पति उधर तुम्हारे लिये छटपटा रहे हैं, फिर भी तुम हँसती हो !

रजनी—यही तो उसने देखा।

सुन्दर—किसने !

रजनी—उसने...कल्याणी ने। उसने देखा, कुछ भी हो परप ति-पत्नी के लिये छटपटता है इसीलिये वह आपके पीछे पड़ी है।

सुन्दर—मै उन जैसा नही हूँ। मै मनुष्य हूँ। मै पुरुष नही हूँ। वे पुरुष जाति के हैं। मै मनुष्य जाति का हूँ। मनुष्य की जाति से अभी किसी का परिचय नही हुआ है। पुरुष स्त्रियाँ सभी मनुष्यता से अपरिचित हैं। इसलिए कोई मनुष्यता को नहीं पहचान पाता। मनुष्यता की पहचान होते ही पति-पत्नी का नाता जोड़ना सम्भव न होगा। स्त्री पुरुष का नाता है वह, वहाँ मनुष्यता का सम्बन्ध नही...।

रमणी—शायद अभी तक यही पागलपन तुम्हारे मस्तिष्क में घूम रहा है ?

सुन्दर—(**रजनी की ओर संकेत करके**) इसी ने तो बोया था यह बीज ? अब उसका अच्छा-खासा वृक्ष बन गया है। उसकी शाखाओं ने मुझे चारों ओर से लिया है। झल्ला गया हूँ मैं। कब हल होगी यह पहेली !

रमणी—देखो दादा, अब जरा, मनुष्यों में आ जाओ। हम सीधे-सादे लोगों की भाषा में मनुष्य शब्द का जो अर्थ है उस मानी में मनुष्यों में आ जाओ। दिन पर दिन यह प्रश्न बढ़ता ही जा रहा है। इसे कही न कहीं रोकना ही चाहिए...।

सुन्दर—फिर जाओ न अपने पति के यहाँ। बुला रहा है न वह ?

रमणी—और यह ?...इसी के लिए न मै आज तक यहाँ रही ? इसकी इज्जत के लिए...इसलिए कि कोई इसकी बदनामी न करे ?

सुन्दर—तो उसे भी पहुँचा दो उसके पति के पास।

रमणी—पर वह तो मेरी बात नहीं मानती।

सुन्दर—तो तुम जाओ...उसे अपने कर्मों के फल भोग लेने दो।

रजनी—जानते हैं, आज कल्याणी क्यों आई थी यहाँ ?

सुन्दर—क्यों ग्राई थी !...रोज ही तो ग्राती है वह...।

रजनी—आज वह रोज की भाँति नहीं ग्राई थी । (**स्तब्धता**) उसके पिता ने ग्राज ग्राखिरी बार उससे कह दिया...(**स्तब्धता**) वह भी हमारी ही भाँति घर छोड़ कर निकली है ।

सुन्दर —(**जोर-जोर से हँसते हुये**) मजेदार बात है । चारों ग्रोर मनुष्यता फैलने लगी है । तुमने यह विष बोया, वही ग्रब सब को हानि पहुँचा रहा है । यह है हमारा जीवन ! मनुष्य की भाँति रहना मनुष्य के लिए कठिन हो गया है । सर्कस के शेर हाथियों की भाँति समाज कायदों की मार से हमें नचा रहा है । यह सर्कस कब समाप्त होगी ? कौन बताये इन बाघ सिहों को कि तुम भेड़ नही, बाघ सिह हो, गला काट कर खून पीने वाले बाघ सिह हो ! यह बात कब उनकी समझ में ग्राएगी ?

रजनी—बन में गये बिना शेर का शेरपन नहीं जागता । मुर्दे का माँस खाने वाले शेर को ग्रपनी जाति का विस्मरण हो जाता है । इसी लिए किसी ने इसके पिंजरे के दरवाजे तोड़ने चाहिए ।

सुन्दर—कौन ग्रौर कब तोड़ेगा ये दरवाजे ? हर व्यक्ति ग्रपनी-ग्रपनी जगह पिजरे में पड़ा है । किसी को भी ग्रपनी मनुष्यता की याद नही ! जी चाहता है...(**कल्याणी ग्राती है**) ग्रागई ? ग्राग्रो...।

रमणी—ग्राग्रो, बैठो । ग्रागे क्या हुग्रा ?

कल्याणी—क्या होता ? मुझे जिस घर से निकाल दिया, उस घर में फिर से जाऊँ ? वह ग्रध्याय ग्रब समाप्त हो गया ।

सुन्दर—घर छोड़ कर भागी हुई ग्रौरतों का शायद ग्रब यह ग्रसायलम बन जाएगा ?

रजनी—घर छोड़ कर भागी हुई नहीं...घर से निकाली हुई ।

कल्याणी—मेरे लिए यहाँ स्थान न हो तो वैसा बताइये । मै ग्रौर कहीं चली जाऊँगी ।

सुन्दर—कहाँ जाग्रोगी ?

कल्याणी—उससे ग्रापको क्या ? मै यहाँ रहना चाहती हूँ. यही

रहना चाहती हूँ। आप यदि मना करें तो आगे का सोचूँगी।

सुन्दर—इन दोनो के पति आज इन्हें बुलाने आए थे...।

कल्याणी—वह मैं जानती हूँ...।

सुन्दर—तो यदि ये फिर से अपने घर गई...ना, ना, ठहरो...अथवा इनके पति कानून के जोर पर इन्हें यहाँ से घसीट कर ले गये, तो फिर भी तुम यहाँ रहोगी ?

कल्याणी—फिर भी का मतलब ?

सुन्दर—इतना भी नही समझती ! यह है इसलिए वह रही...बहन है न वह मेरी !...अब यदि ये दोनों चली जाये तो मुझ पर निगाह रखने के लिए यहाँ मुकद्दम कौन होगा ? फिर तुम कैसे रहोगी ?

कल्याणी—मनुष्य की भाँति...समझे ! मनुष्य की भाँति ! स्त्री की भाँति नहीं।

सुन्दर—सुन लो रजनी, यह विष काफी फैलने लगा है। (**रजनी हँसती है**) हँसती क्या हो ? तुम लोग हँसोगी पर रोना पड़ेगा मुझे।

कल्याणी—रोने से डरते हैं। ये हैं पुरुष। लोग कहते हैं पुरुष धैर्यवान् होता है, रजनी। सच तो यह है कि पुरुष कितना दुर्बल है यह हम औरतें ही जानती हैं। बाल्यावस्था में उसे माँ सम्भालती है, हारी-बीमारी में भी मा बहनें ही ख्याल रखती हैं और प्रेम के कारण भी किसी युवती के कंधे पर सिर टिकाने के लिए आतुर रहता है यह धैर्य का पुतला। इन लोगों के सहारे हमे जीना होता है। ऐसे दुर्बल प्राणियों के सहारे जीना होता है हम औरतों को ? हैं...।

सुदन्र—(**उठ कर इधर-उधर टहलता हुआ**) मतलब यह है कि तुम भी यहाँ रहोगी और मुझ जैसे दुर्बल व्यक्ति की देखभाल करोगी ?

कल्याणी—जी।

सुन्दर—और तुम दोनों कब जाओगी ?

रजनी—जब दुर्बल व्यक्ति अपनी देखभाल करने योग्य हो जायगा तब।

कल्याणी—तो इस तरह शायद सारा जीवन हमें यहीं रहना पड़ेगा।

सुन्दर—बिल्कुल ठीक कहा। तो हमारा यह घर-बार इस तरह बस गया...क्यों? अब इसमें तबदीली नही हो सकती?

रमणी—यह कौन कह सकता है? वह हम स्वयं निश्चित कर लेंगी, यहाँ हम और किसी की नही सुनेंगी। क्यों री? ठीक है न? (**दोनों हाँ कहती हैं**) देख लो, हो गया विश्वास?

(**सुन्दर एक कोने में की कुर्सी पर जाकर बैठ जाता है और एक प्रदीर्घ निश्वास छोड़ता है**)।

रमणी—चलो जी, निश्वास छोड़ने से चूल्हा नहीं जलेगा। चूल्हा हमी को जलाना होगा। कृष्णा कहाँ गया?

सुन्दर—अब कृष्णा तुम्हारे हाथ से निकल गया। अब वह बहुत बड़ा आदमी हो गया है। मुझ से भी अधिक दुर्बल हो गया है। अब तो तुम्ही को उसकी चिन्ता करनी चाहिए।

रमणी—अच्छा-अच्छा, तुम्हारी चिन्ता करेंगी, कृष्णा की चिन्ता करेंगी, और भी कोई ऐसे ही दुर्बल यहाँ आयें तो उनकी भी चिन्ता करेंगी। चलोजी। (**तीनों अन्दर जाती हैं। सुन्दर एक-एक चित्र की ओर देखता हुआ पागल की भाँति सारे स्टूडियो में घूमता रहता है। आँथर आता है**)।

आँथर—वाह! सुन्दरराव, सोचा पता नही आप मिलते है या नही। तो आखिर आपकी तपस्या सफल हो ही गई। सुना है आपको पेरिस का कोई बड़ा सा पुरस्कार मिला है। बात यह है 'घर की मुर्गी दाल बराबर' हमारे साहित्य के बारे में भी यही बात हैं। वह माघवराव पटवर्धन बहुत बड़ा कवि हैं, उसका वह निबन्ध यहाँ के परीक्षकों ने रद्दी बताया पर कहते हैं उसकी कदर करने वाला कोई पेरिस का ही फ्रेंचमैन निकला। उसकी सिफारिश के कारण माघवराव बम्बई विश्वविद्यालय के प्रथम डी० लिट् हुए। क्या समझे आपको कौन सी डिग्री मिली?

सुन्दर—पेरिस में डिग्रियाँ नहीं होतीं।

ऑथर—कह क्या रहे हैं। पेरिस में डिग्रियाँ नहीं होतीं ? फिर वहाँ के विद्वान् कैसे पहचाने जाँय ? बिना लेबल के गाहक माल कैसे पहचाने ! ऊँ हुँ, लेबल चाहिये, डिग्री चाहिए, दो-चार अक्षर नाम के आगे लगाने के लिए मिलने चाहिये। केवल गौरव किस काम का !

सुन्दर—डिपलोमा जो मिलता है।

आथर—डिपलोमा घर मे टंगा रहता है। उसे गले में लटकाये तो तो फिरा नहीं जा सकता। समाचार पत्रों में नाम के आगे कोई क्या लिखे। नही, नहीं, तुम्हारी यह सारी मेहनत व्यर्थ हो गई। इससे तो इंग्लेन्ड को ही चित्र भेजते।

सुन्दर—वहाँ उड़ ही चुकी उनकी धज्जियाँ।

ऑथर—क्या ? इंग्लैन्ड का भी यही हाल है !

सुन्दर—हमारा हिन्दुस्तान इंग्लैड की परछाई है...इंग्लैड के माप-दंड से यहाँ की विद्वत्ता नापी जाती है। कला के विषय में वे लोग हम जैसे ही निर्बुद्ध हे। बिलकुल रूढ़िवादी है। नाविन्य से उन लोगों को एक दम नफरत है...इसीलिए कला के लिए हम लोगों को पेरिस इटली की ओर ताकना पड़ता है।

ऑथर—यह बात है ! पर कुछ भी कहिए, डिग्री बिना अपने राम को तसल्ली नही होती। केवल प्राइज लेकर क्या करना है ! बहुत हुआ तो रोम जाईगा और अध्ययन कीजियेगा, वापिस आइएगा पर ससार को यह जानने के लिए कि आपकी विद्वत्ता की डिग्री कितनी बड़ी है, दो चार अक्षरों की कोई सी डिग्री मिलनी ही चाहिए। यह कुछ नही। पहले आप डिग्री हासिल कीजिए।

सुन्दर—मुझे डिग्री नही चाहिए...प्राइज नहीं चाहिए...और रोम भी जाने की इच्छा नहीं, सीखना है तो यहीं काफी गुंजाइश है। यह सारा जीवन भी उसके लिए थोड़ा है...।

ऑथर—तह ठीक है, फिर भी में कहता हूँ जो हुआ वह थोड़ा

नही। अब हमें आपका स्वागत करना चाहिए। मैं उसका सारा आयोजन कर रहा हूँ।

सुन्दर—सुनो, तुम इस झंझट में न पड़ो। तुम्हारे लिए मैने कुछ नहीं किया है। अपनी तुष्टि के लिए मैंने वे चित्र पेरिस भेजे थे। मुझे वे पसन्द थे। यहाँ के आर्टिस्टों को वे पसन्द न थे। हमारे यहाँ के बड़े आर्टिस्टों को भी विलायत के आर्टिस्ट बड़े दिखाई देते हैं इसीलिए मैंने चित्रों को वहाँ भेजा। बड़ों के बडों ने उन्हें उत्तम ठहराया, मुझे संतोष हुआ, इससे अधिक मुझे और कुछ भी नही चाहिए।

आथर—यह कैसे हो सकता है। हमारा भी तो कुछ कर्त्तव्य है, क्या वह हमें न करना चाहिए ! यदि यह सब न करें तो दुनिया न कहेगी कि हम अपना कर्त्तव्य करने से चूक गये। यह सब कुछ नही, यह समारम्भ होना ही चाहिए। इस मामले में हम आपकी कुछ न सुनेगे। (**यह कहता हुआ चला जाता है**)।

सुन्दर—अरे, ठहरो-ठहरो, जरा मेरी बात तो सुनो। हाँ...यह है दुनिया। (**फिर से जाकर एक कुर्सी पर आड़ा लेट जाता है**) अन्दर से नट के कहे हुए 'धन्यवाद ! धन्यवाद'...शब्द सुनाई देते है। यह आया दूसरा गधा ! (**नट आता है।**)

नट—धन्य हो ! धन्य हो...!

सुन्दर—चुप रहो।

नट—भारत के आभूषण, हे युवक, सारी भारत भूमि तुम्हारे वैभव के गौरव गीत गा रही है और तुम मुझे चुप रहने के लिये कह रहे हो !

सुन्दर—मूर्ख ने की हुई स्तुति निन्दा से भी अधिक खटकती है

नट—मैं मूर्ख ! मै मूर्ख हूँ ऐ ? कलाकार कुल शिरोमणि, कलाकार सुलभ अभिमान से उद्दीप्त होकर...।

सुन्दर—कौन कलाकार ?

नट—तुम ! तुम कलाकार। मैं...मै कलाकार, क्या एक कलाकार दूसरे कलाकार की महिमा देखकर उद्दीप्त नही होता ?

सुन्दर—तुम कलाकार ?

नट—मै कलाकार नही ! मै कलाकार नहीं हूँ तो और कौन है कलाकार ! देखो—मेरी ओर देखो—मेरे अंग संचालन देखो । सुनो... मेरी भाषा सुनो। मेरी वाणी का लालित्य सुनो। मै कलाकार नही हूँ, ऐ !

सुन्दर—कृत्रिमता की साक्षात मूर्ति हो तुम...

नट—अभागे युवक, कला को कृत्रिम कहते हो !

सुन्दर—शायद यही तुम्हारी कला है क्यो ? क्या इसी कला के कारण तुम कलाकार हो !

नट—हाँ ।

सुन्दर—अच्छा ? (**हँसता है**)

नट—हँसो मत, प्रकृति पर विजय प्राप्त करके यथार्थ को कलामय करनेवाली मेरी इस कला को हँसते हो ?

सुन्दर—(**गम्भीर होकर**) इधर आओ। यहाँ बैठो (**नट पैंतरे से बैठता है**) इस प्रकार कलापूर्ण ढंग से न बैठो, जरा आदमी की भाँति बैठो ।

नट—आदमी की भाँति ? कलाकार को आदमी बनने के लिए कहते हो ? तो फिर राह के मजदूर और रगमंच के कलाकार में अन्तर ही क्या रहा ! दीवालें रंगनेवाले रगसाज और तुम्हारे जैसे कलाकार में अन्तर ही क्या रहा ! नहीं...मैं उस प्रकार नहीं बैठूँगा। मैं आदमी जैसा नहीं बैठूँगा। मै कलाकार हूं, आदमी नहीं...

सुन्दर—यह बात तुमने बिल्कुल ठीक कही। पर मैं तुम्हें इन्सनों मे लाना चाहता हूँ, इस कृत्रिमता में से खींचकर तुम्हें बाहर निकालना चाहता हूँ ।

नट—(**पैंतरा बदल कर**) नहीं...नहीं,...नहीं। प्रतिगामी युवक, मैं पुरोगामी हूँ। जीवन से उत्पन्न होने वाले संघर्ष के नये ऐहसास की अनुभूति में से तुम मुझे पीछे खींचोगे !

सुन्दर—क्या कहा ?

नट—हाय ! तुम इतना भी नहीं समझते, ऐं ?

सुन्दर—मैं एक सीधा सादा आदमी हूँ। मेरी समझ में ऐसी कलात्मक भाषा नहीं आती। यह किसका वाक्य तुमने कहा था ?

नट—किसका ? हर ! हर ! कलाकार के अन्तरतम से प्रस्फुटित भावनाओं की उतुंग लहरों की कलकल से प्रसारित होने वाली जीवन की सूक्ष्म विचेष्टाओं को व्यक्त करने के लिए किसी भी कलाकार को किसी अन्य की बेढ़ंगी भाषा अपनानी नहीं पड़ती।

सुन्दर—अब यही बात मनुष्य की साधारण भाषा में तो कहो।

नट—हुँ...(**विचार करता क्षण भर चुप रहता हैं**)।

सुन्दर—नही सूझता ? अच्छा मुझे एक बार और तो सुनाओ वह वाक्य। (**नट खड़ा होकर वही वाक्य अर्थानुरोधपूर्ण अभिनय करता हुआ दिखाता है**) ठीक ! अब सुनो। मैं मनुष्य की भाषा मे तुम्हें सुनाता हूँ। कलाकार का हृदय भावुक होता है। वह सब कुछ सहज ही जान जाता है। जो वह जानता है वह जचाने के लिए क्योंकर दूसरे की भाषा का उपयोग करे ?

नट—फिर से कहो।

सुन्दर—सुनो। (**वह वाक्य फिर से दुहराता है**)।

नट—खूब ! अर्थ वही है पर शब्दों की वह झंकार नही...भाषा सौष्ठव नही...भाषा का वैभव तो है ही नहीं। भाषा की सरलता की हद है फिर भी कला का जरा भी स्पर्श नही।

सुन्दर--बाजे गाजे और नगाड़ों की दनादन नही। केवल बांसुरी का सुरीला गान !

नट—हूँ ! पर नगाड़ों की उस दनादन में जो सौन्दर्य है...जो कला का परमोच्चांक पूरा किया गया है.. वह बांसुरी में नही। बांसुरी मीठी हो सकती है...मधुर हो सकती है...बांसुरी के शब्द से मतवाला सांप डोल सकता है...पर दनादन...कला की दनादन...वास्तविकता पर

विजय पाने वाली कला की खनाखन...वह निनाद वह झंकार...तुम्हारी इस बांसुरी मे नहीं ।

सुन्दर—यह बात है ! तो आओ हम लोग यही देखें ।

नट—पर ठहरो, तुम्हें धन्यवाद देने के लिये मैं आया हूँ ।

सुन्दर—अभी रहने दो । पहले हम लोग जरा कला पर चर्चा कर लें । **(कल्याणी आती हैं)** आओ कला, अभी हमारी कला पर ही चर्चा चल रही है, समझी !...इसे कला का बड़ा अभिमान है । कह सकते हो वह फिर से वाक्य ?

नट—फिर से ? (**चिल्ला कर**) मेरा अपमान करते हो ? ऐं ? मेरा अपमान करते हो ? मैं नट हूँ । एक ही वाक्य हजार बार, हजार रात, हजारों लोगों के सामने उच्चारने में भी जो गलती नही खाता, जिसका उच्चारण...जिसके विक्षेप और प्रक्षेप तनिक भी नही बिगड़ते उसी से पूछ रहे हो कि फिर कह सकते हो या नहीं ? धिक्कार है ! धिक्कार है ! ! धिक्कार है तुम्हें ! ! ! **(रजनी और रमणी प्रवेश करती हैं । एक के हाथ में आधी काटी हुई तरकारी की गड्डी और दूसरी के हाथ में धुले हुए चावलों का पात्र है)**

रजनी
रमणी } ...क्या हुआ ?

रजनी—आग वाग लग गई क्या ? क्या हुआ ?

सुन्दर—धन्यवाद देने के लिए आया और बिचारा धिक्कारने लगा ।

नट—क्यों न धिक्कारूँ ? मेरी कला का अपमान !

सुन्दर—मै तुम्हारा अपमान नही करता और न तुम्हारी कला का अपमान करता हूँ । तुम नट हो, हो न ? जिस प्रकार के अभिनय की योजना लेखक ने की हो तुम्हें वही करके दिखानी होती है । समझ लो किसी मूर्ख लेखक ने किसी मुझ जैसे पात्र का निर्माण किया और दुर्भाग्य से उसका अभिनय करना तुम्हारे मत्थे पड़ा...।

नट—ऐसा होता है...बार-बार होता है...पग-पग पर होता है, पर

हम सम्भाल लेते है। हम उस लेखक की नहीं सुनते...स्वयं प्रेरित भावना से अन्तःकरण से जो उद्रेक होगा...।

सुन्दर—ठहरो, ठहरो, ठहरो। जरा आदमियों में आओ। पर पहले तुम्हारी महिमा मुझे इन्हे सुना लेने दो। सुना रजनी, और तुमने भी, मैंने यूँ ही गलती से कहा,...इसने कुछ बड़ी क्लिष्ट सी बात कही थी। मैंने कहा, 'यह किसका वाक्य है?' तो क्रुद्ध हुआ और इसने कहा... क्या कहा जी?

(नट पहले वाला वाक्य एक साँस में कह दिखाता है)

सुन्दर—तुम्हारी समझ मे आया? नहीं? अच्छा अब ऐसा करो, तुम्हारा दम साधने का अभ्यास मुझे पता लग गया। अब जरा ठडे दिल से कहो। (**नट ताल और लय में बोलता है और वाक्य के अन्त में दम फूल जाने के कारण एक दम कुर्सी पर बैठता है**)

सुन्दर--(**नट से**) समझे? (**नट एक प्रदीर्घ निश्वास छोड़ता है**) और तुम लोग?...समझी या नही?

कल्याणी—शब्द समझ मे आये...अर्थ समझ मे नही आया।

रजनी—शब्द सुनाई दिये...बस!

रमणी—मेरी तो कुछ भी समझ मे नहीं आया।

सुन्दर—अब मै बताता हूँ। इस सारे क्लिष्ट वाक्य का सारांश इतना ही है...(**नट से**) अब जैसा मै बताता हूँ वैसा तो कहो।

(सुन्दर अपना पहले वाला वाक्य कह दिखाता है)

नट—यह कला नही झंझट बाजी है।

सुन्दर—यह कल्पना अभी रहने दो, मैने कहा न तुम से कि ऐसे एक पात्र का निर्माण किया गया है, ऐसे मुझ जैसे...ऐसे समझा कर तो दिखाओ। (**सुन्दर वाक्य सिखाता है। नट कहता है। बाद में स्वतंत्र रूप से वाक्य कहता है**)

नट—ऊँ हुँ, यह नहीं बनता। अंग विक्षेप के लिये स्थान नहीं है।

पैंतरे नहीं बदले जा सकते, यह बिल्कुल घरेलू बोलना लगता है। नहीं। ऊँ, हुँ,।

सुन्दर—बहुत मुश्किल है क्यों ? मनुष्यता इतनी ही कठिन है। कला का मतलब मनुष्यता है...प्रकृति का नग्न स्वरूप है। कला का मतलब आभूषणों से लदी हुई कामिनी नहीं।

नट—पर अभिनय...अभिनय क्या है ?

सुन्दर—अभिनय क्या है ? अभिनय का अर्थ है जैसे को वैसा दिखाना, जो नहीं है वह दिखाना नहीं। प्रकृति का स्वाभाविक स्वरूप... देहाती नाई के आइने मे की विकृति नहीं।

नट यही मैं तुमसे सहमत नहीं।

सुन्दर—अब कैसे आदमियों जैसे बोले।

नट—आदमियो जैसा, ऐं ! मै आदमी नहीं हूँ ?

कल्याणी—यह ठीक है। आदमी के कोई लक्षण आप में नहीं दिखाई देते।

रजनी—क्यों जी आप का विवाह हो गया है ? पूछने के लिए क्षमा कीजिए।

सुन्दर—यह विवाहित है। तुम्हें इससे डरने की जरूरत नहीं।

नट—विवाह ही नहीं, चार बच्चे भी हैं मुझे।

रजनी—आपके बच्चे आपसे डरते नहीं ?

नट—क्यो डरें !.मै उनका बाप हूँ। बड़े होशियार है मेरे बच्चे।

रजनी—और आप की पत्नी ?

नट—वह भी बड़ी भावुक और स्नेह शील है। उसे मुझ पर बड़ा नाज़ है।

रजनी—क्या आप उससे इसी तरह बातें करते हैं ?

नट—(**घबरा कर**) इसी तरह ? इसी तरह यानी ?

रजनी—यानी जैसे अब बोल रहे हैं ऐसे ?

नट—(**घबरा कर**) हाँ !

रजनी—और वह उस समय का बोलना ?...कलाकार का बोलना ? उस तरह क्यों नहीं बोलते आप उसके साथ ?

नट—वह घर है, रंगभूमि नहीं।

सुन्दर—सुनो रजनी, सुनो कल्याणी घर रंगभूमि नहीं...और रंग-भूमि भी घर नहीं। (**नट से**) यही न ?

नट—हाँ...क्या कहा ?

सुन्दर—कला और वास्तविकता का अन्तर देख रहा था मैं। कला यानी रंगभूमि और वास्तविकता यानी घर, यही तो तुम्हारा कहना है न ?

नट—हाँ।

सुन्दर—यानी जो घर में दिखाई देता है वह रंगभूमि पर नहीं दिखाई देता, तो क्या रंगभूमि घर का बिगड़ा रूप है ?

नट—अप्रबुद्ध कलाकार...

सुन्दर—ठहरो...घर मे आओ। यह रंगभूमि नही है। घर के आदमियों सा बोलो। घर में जैसे पत्नी के साथ बोलते हो वैसे बोलो। बच्चों से बोलते हो वैसे बोलो। बीबी बच्चों की वातें चल ने पर जैसे अभी बोल रहे थे वैसे बोलो। (**नट एक निश्वास छोड़कर नीचे बैठ जाता है**) देखा रजनी, यह हो रहा है, दंभ का मोल है। स्वाभाविक जीवन किसी को नहीं जचता। यही हमारी चित्रकला में चल रहा है। हमारी कला से मनुष्यता अदृश्य हो रही है। (**कृष्णा फ्रेम लिये प्रवेश करता है**) वह आया एक कलाकार, कहाँ चले गये थे तुम कृष्णा ?

कृष्णा—पागल है दुनिया। गोप्या को दिखाया...गन्या को दिखाया ...धोंड्या को दिखलाया...किसी की भी समझ में नहीं आया। काश देवता की तस्वीर ही होती !...पर यहाँ क्या है। केवल छपे हुए अक्षर वर...और वे भी अंग्रेजी। पढ़े नहीं जाते। धोंड्या बालबोध पढ़ता है। उसने कहाँ इसका बालबोध कर के ले आओ। मालिक, आप के साठ-पेंसठ रुपये फिजूल गये।

सुन्दर—नहीं भई। ये रुपये भुनाने तुम रामू नौकर के पास गए।

हनुमान को मणि दिखाने गए। उनके लिए यह कागज क्या महत्त्व रखता है ? मणि की कीमत चौहरी जानता है ।...उन जौहरियों को आ जाने दो।

नट—यह क्या है ?

कृष्णा—इन्हें दिखाऊँ ?

सुन्दर—इसकी भी समझ में नहीं आयगा।

कृष्णा—(**नट से**) अंग्रेजी आती है आप को ?

नट—क्या कहा ? तुम नहीं जानते ? मैं लोकप्रिय नट हूँ...नट सम्राट् हूँ। अंग्रेजी जाने बिना मै नट सम्राट् कैसे बन सकता हूँ ?

सुन्दर—फिर मनुष्यों मे से उठने लगे।

नट—देखूँ...(**कृष्णा के हाथ से फ्रेम लेकर पढ़ता है**) कृष्णा डेमा रामगडा, फैलो आफ दी रायल सोसायटी आफ आर्टस् !...क्या ? यह कृष्णा एफ० आर० एस० ए० है।

कृष्णा—किष्णा डेमा रामगडा ए फा रे शे । वाहरे मै ! तीन गिन्नियाँ खर्च की हैं साहब...मैंने नहीं...इन मालिक ने। मैंने नौकरी ही वैसी की है...।

रमणी—सच है। जिन्दगी भर मालकियत चलाई अपने मालिक पर ... क्या उसका ऐहसान न उतारना चाहिए मालिक को !

नट—यह नौकर एफ० आर० एस० ए० ऐं ?

कल्याणी—क्यों न मिले उसे यह डिग्री ? तीन गिन्नी की बात है। कोई भी बन सकता है एफ० आर० एस० ए०...आप भी बन जाइए न एफ० आर० एस० ए०।

सुन्दर—क्या इन ऐसी खरीदी जाने वाली डिग्रियों के मापदंड से मापी जायगी तुम कलाकारों की योग्यता ? क्या कला के प्रत्यक्ष प्रमाण की कहीं कीमत नहीं ! (**आथर प्रवेश करता है**)

ऑथर—(**नट से**) यहाँ बैठे थे ? सारा शहर छान डाला तुम्हारे लिए पर तुम्हें अपनी कला की कीमत है कहाँ ? चलो उठो। शिष्टमंडल

में तुम्हारे न होने से सब कलाकरों की पूर्ति कैसे हो सकती है ?

नट—कैसा शिष्टमंडल ?

ऑंथर—जान जाओगे अपने आप । चलो उठो । (**वे दोनों जाने लगते हैं तभी कृष्णा उनके सामने आता है**)

कृष्णा—(**आँथर को फ्रेम दिखाते हुए**) पहले यह तो देखिए ।

ऑंथर—मेरे पास अभी समय नही है ।

सुन्दर—अजी देखो तो सही ।

ऑंथर—देखूँगा...देखूँगा...देखने का समय आने पर देखूँगा । (**ऑंथर, नट और कृष्णा जाते हैं**)

सुन्दर—देख लिया ? इतनी बड़ी डिग्री कृष्णा ने हासिल की है पर इन्हें उसकी कदर नहीं । और जानती हो यह काहे की धूमधाम चली है । मेरा स्वागत करने वाले हैं । यहाँ राद्दी ठहराये गए मेरे चित्र पेरिस की प्रदर्शनी में दिखाये गये इस बात का गौरव मान कर मेरा सम्मान करने वाले हैं । यह है बिलायती सिक्के की करामात । (**बाबूराव आता है**)

बाबूराव—तुम यही हो न सुन्दरराव ? अभी आया था तब इनमें से कोई भी यहाँ न थी । अब तुम सभी यहाँ हो । अब तुम्ही बताओ यह इस प्रकार कब तक चलेगा ?

सुन्दर—उसी से पूछो न ?

बाबूराव—(**रजनी से**) मैं पूछ रहा रहा हूँ ।

रजनी—मैं सुन रही हूँ ।

बाबूराव—फिर ?

रजनी—मुझे घर से निकाला गया है ।

बाबूराव—ठीक है, पर अब मैं ही बुला रहा हूँ ।

कल्याणी—पहले क्यों निकाला और अब क्यों बुलाने आये हैं, क्या हमें यह नहीं जानना चाहिए !

बाबूराव—मैं उससे कह रहा हूँ ।

कल्याणी—वह अब यहाँ अकेली नहीं है। अब हम तीनों एक हैं, हैं न ?

बाबूराव—एक कहने से तीनों एक नहीं होती। मेरा विवाह एक ही से हुआ है। (**सब हँसते है**) हँसिये नही। मैं अपनी पत्नी से उत्तर चाहता हूँ।

रजनी—पहले क्यों निकाल दिया था मुझे ?

बाबूराव—उस दिन मेरी अवज्ञा की तुमने...नही आऊँगी कहा...

रजनी—अब भी वही कहती हूँ।

बाबूराव—पर अब मै वैसा नही कह रहा हूँ। तुम्हें चलना है या नही ! (**रजनी कुछ नहीं बोलती**) मै फिर से पूछ रहा हूँ, तुम्हें चलना है या नही।

कल्याणी—मै कह रही हूँ वह नहीं आयगी।

बाबूराव—मै उससे उत्तर चाहता हूँ।

कल्याणी—जो मैने कहा वही उसका उत्तर है।

बाबूराव—(**सुंदर से**) तुम्हारा क्या विचार है ?

सुन्दर—मेरा इससे क्या सम्बन्ध है ?

बाबूराव—यह तुम्हारे यहाँ आकर रही है !

सुन्दर—इस तरह तो यह भी रही है...वह भी रही है। मेरे आत्मीय जन मेरे यहाँ आकर रहे तो उन्हे ना कहने के लिए मैंने अभी इतना गार्हस्थ्य धर्म नहीं छोड़ा है।

बाबूराव—यह बात है ? ठीक है। अब कानून क्या कहता है मुझे देखना है। (**जाता है**)।

सुंदर—(**क्षण भर बाद**) परेशान कर रखा है इस कायदे-कानून ने और रूढ़ि ने ! रजनी जाओ तुम यहाँ से...और तुम भी जाओ रमणी।

कल्याणी—(**क्षण भर बाद**) और मुझे कहीं जाने के लिए नहीं कहा ?

सुन्दर—तुम्हारे बारे में कानून बीच में नहीं आता।

रमणी—कानून से डर गये। मै बहन हूँ न तुम्हारी। मायके भी न आऊँ मे ?

सुंदर—पर कितने दिन ?

रमणी—वह मैने तय करना है।

सुदन्र—और यह ?

रजनी—मै आपकी शिष्या हूँ।

सुन्दर—अच्छा ! एक बहन...एक शिष्या...और यह तीसरी ? यह कौन है ?

कल्याणी—अमीर मा बाप ने घर से निकाली हुई एक निराधार भिखारिन ।

सुन्दर—पेरिस की प्रदर्शनी मे मेरे चित्र रखे गये इसलिये क्या तुम लोग मुझे अमीर समझने लगी हो ?

रजनी—यह हमने कब कहा ! अनाथों को आश्रय क्या केवल अमीरों का ही चाहिए होता है ?

सुन्दर—फिर किसका ?

रजनी—किसी का भी ! गरीबों का ख्याल गरीबो को ही होता है।

सुन्दर—यह बात है ? (**स्तब्धता**)

रमणी—काहे का विचार कर रहे हो दादा ?

सुन्दर—किस हद तक कितना अविचार करना चाहिए, इसी का विचार कर रहा हूँ मै।

रमणी—फिर ?

सुन्दर--कुछ निश्चित नहीं कर पा रहा हूँ। विचार करके देख रहा हूँ। समझाता हूँ कि ससार के अन्त तक यही विचार करते बैठना पड़ेगा मुझे ।

कल्याणी—अविचार करने के लिए विचार नही करना पड़ता।

सुन्दर—भूलती हो कला। जब विचार पूर्वक अविचार करना होता है तब बहुत विचार करना पड़ता है। यश की आशा हो तो अविचार से

अविचार करना योग्य नहीं। अविचार पौरुष का प्रमाण है...पौरुष का सबूत है, व्यर्थ विचार करना स्त्रियों का लक्षण है, इन दोनों को मिला कर मनुष्यता कैसे निर्माण होती है यह देख रहा हूँ।

रजनी—क्या मनुष्यता ? इस मनुष्यता ने बहुत बुरी तरह से आप को जकड़ रखा है। यह लक्षण ठीक नही।

सुन्दर—सच है। वह मनुष्य मेरी दृष्टि के सामने है। सींग, दुम, दाढ़ी मूँछ और स्तन वाला मनुष्य...सब सर्वनामो से परे वाला मनुष्य ...उसने तंग कर रखा है मुझे ! उसी की दृष्टि से अविचार करने वाला हूँ। (**बलवंतराव आता है**)

बलवन्त—बाबूराव हैं यहाँ ?...नही है ?

सुन्दर—देख लीजिए न।

बलवन्त—मुझ से कहा यहीं जा रहा हूँ...और यह तो अभी यहीं है।

कल्याणी—वे आकर चले गये है।

बलवन्त—इसे लिये बिना ?

कल्याणी—जी।

बलवन्त—मै वैसा नही जाऊँगा।

सुन्दर—अच्छी बात है। एक पत्थर कम हो जायगा मेरे गले से।

बलवन्त—(**रमणी से**) क्यों ?...मै क्या कह रहा हूँ ?

कल्याणी—किससे ?

बलवन्त—इससे, अपनी धर्मपत्नी से।

रमणी—क्या ? क्या बात है ?

बलवन्त—कह रहा हूँ अब घर चलो।

रमणी—मैं मायके आई हूँ।

बलवन्त—यह नैहर वास कब समाप्त होगा ?

रमणी—जब मैं वापिस आऊँगी तब...।

वलबन्त—कब वापिस आओगी !

रमणी—नैहरवास समाप्त होते ही...बहुत बड़ा आकर्षण होता है इस मायके का।

बलवन्त—क्यों जी भाई साहब, आपका क्या विचार है ?

सुन्दर—मेरा इससे क्या सम्बन्ध है... ?

बलवन्त—कितने दिन इसे यहाँ रखेंगे ?

सुन्दर—उसके जाने तक।

बलवन्त—वह यहाँ से कब जाएगी ?

सुन्दर—उसी से पूछ लीजिए न ?

बलवंत—बड़े दुष्ट लोग दिखाई पड़ते हैं आप ! एक भी ठीक से जवाब नही देता।

कल्याणी—जाइए न अब घर।

बलवन्त—जब आया था तब मैंने क्या कहा था ? इसेलिये बिना में यहाँ से नहीं जाऊंगा।

सुंदर—मेरे गले में चौथा पत्थर पड़ा !...अब वह बाबूराव भी शायद यही आकर रहेगा।

रजनी—जहाँ ये होंगे वहाँ हम नही रहेंगी।

सुंदर—तो ऐसा करो बलवन्तराव, उस बाबूराम को भी यहीं ले आओ। यही रहो तुम दोनों...ताकि अपने आप ये पीड़ायें यहाँ से चली जायेंगी।

बलवंत—और किसी को जाने की जरूरत नहीं। यह मेरे पास रहनी चाहिए।

कल्याणी—या आप इसके पास !...यानी दोनों एक जगह।

रमणी
रजनी } अब वह सम्भव नही।

सुन्दर—यह तो बड़ा विकट प्रसंग आ खड़ा हुआ है।

बलवन्त—प्रसंग विकट तो है ही...फिर अब मैं क्या करूँ ?

सुन्दर—वह आप लोग अपना देख लीजिए, मुझे चिन्ता है अपने

भोजन की। यह तरकारी यही पड़ी है। चावल यही हैं। ये तो सुनती नहीं, कृष्णा भी कही मुँह छिपा कर चला गया है, मैं जाता हूँ अब चूल्हे की उपासना करने। **(तरकारी और चावल का पात्र लेकर अन्दर जाता है। रजनी, रमणी और कल्याणी कोने में कुर्सियाँ घुमा कर वर्तुलाकार बैठ जाती हैं)।**

बलवन्त—(जोर से चिल्ला कर) क्यों? चलोगी या नही?

कल्याणी—(अपनी जगह से और जोर से चिल्लाकर) हम कोई भी यहाँ नही है। हम यहाँ से चली गई है।

बलवन्त—अब क्या कहा जाय इनसे। **(विश्वासराव आता है)** अच्छा हुआ जो आप आ गये।

विश्वास—यही हो न? अच्छा हुआ। थक गया मै ढूढते-ढूँढते! यह मुझे पहले जानना चाहिए था कि दॉवरी पर गाय होने से बैल वही जायगा। **(ऑथर, कवि, बाबूराव और कुछ अन्य लोग हाथ में हारों की टोकरी लिए आते है) नट खाली हाथ आता है। कृष्णा सबसे पीछे हाथ में फ्रेम लिए आता है, सबके बीच में से होकर आगे आता है)।**

कृष्णा—(उन्हें रोकते हुए) हाँ, यही खड़े रहिये। आगे न बढ़ना, मेरा हुक्म है।

विश्वास—अच्छा! अच्छा! तुम्हारे मालिक कहाँ है?

कृष्णा—(इधर-उधर देखकर) अरे वाह! यही तो थे। कहाँ गए! कोई भी नही दिखाई देता यहाँ, और वे औरते कहाँ गई?

(हाथ में चावल का पात्र लिए सुन्दर अन्दर से बाहर निकलता है उसने आस्तीनें चढ़ाई हुई हैं। धोती ऊपर खोंसी हुई है। शायद वह अन्दर पात्र में चावल घोट रहा था।)

सुन्दर—यह क्या गड़बड़ है?

(विश्वासराव एक व्यक्ति के हाथ से टोकरी लेकर उसमें से एक हार निकाल कर सुन्दर के सामने आता है)।

विश्वास—समग्र कलाकारों का यह शिष्टमंडल आपको गौरवान्वित

करने के लिए यहाँ आया है। उसकी ओर से यह हार...।

आॅथर—ठहरिये.. (**विश्वासराव को पीछे ठेलकर हार लिये स्वयं आगे आकर**) पेरिस की प्रदर्शनी मे आपके चित्रों को स्थान देकर आपका जो सम्मान पेरिस ने किया और उसके कारण विदेश मे भारत का नाम उज्ज्वल करने मे आप जो समर्थ हुए, उसके लिए अखिल भारतीय साहित्त समिति की ओर से मै यह हार...।

सुन्दर—ठहरो। मुझ से भी अधिक सम्मान पाने योग्य एक महान् व्यक्ति यहाँ होते हुए...(**कौन-कौन कहकर सारे चिल्ला पड़ते हैं।**) एफ० आर० एस० ए० की उपाधि से जिसे विभूषित किया गया है वह है यह...।

कृष्णा—मै...कृष्णा डेमा रामगड़ा, ए—फा—रे—से।

सुन्दर—यह...(**कृष्णा प्रेम दिखाता है। नट के अतिरिक्त सभी एक दूसरे के हाथ से वह लेकर देखते हैं**)

विश्वास—यह कृष्णा एफ० आर० एस० ए० है ?

सुन्दर—क्यों न हो ! केवल तीन गिन्नियों की बात है।

बलवन्त—तीन गिन्नियों की बात है। तो यह डिग्री नही है ?

सुन्दर—आप ही देख लीजिए। हाँ विश्वासराव अब वे हार डालिए कृष्णा के गले मे। (किसी एक के हाथ से हार लेकर कृष्णा के गले मे डालना है। उसकी देखा-देखी एक-एक व्यक्ति टोकरी मे से हार कृष्णा को पहनाने लगता है)

विश्वास—अरे. तुम लोग यह क्या कर रहे हो ! हम लोग सुन्दरराव के सम्मान के लिए न आये थे ? सुन्दरराव, अपने अखिल भारतीय कला मडल की ओर से मैं यह हार—

सुन्दर—ठहरिये। किस लिए हो रहा है यह मेरा सम्मान ?

विश्वास—पेरिस की प्रदर्शनी में आपके चित्र...।

सुन्दर—और यहाँ की प्रदर्शनी में ?

विश्वास—छोड़िये भी उसे।

सुन्दर—वही मेरे चित्र फेंक दिये गए थे। आप लोगों ने मेरी

अवहेलना की। मुझे उपदेश दिया कि अच्छे चित्र की भाँति चित्र बनाया करूँ। वही है न आप लोग ?

विश्वास—पर अब पेरिस की प्रदर्शनी में...।

सुन्दर—पेरिस की प्रदर्शनी में कुछ भी हुआ। लेकिन यहाँ ! मेरी इस मातृभूमि के कलाकारो ने क्या कीमत लगाई मेरे चित्रों की। फेंक दिये। मेरे देश की प्रदर्शनी मे दिखाये जाने के लिए वे अयोग्य ठहराए गए, और अब जब सात समुद्र पार के लोगो ने मेरी तारीफ की, तब आप लोग हार लेकर स्वागत के लिए दौड़े आए हैं।

आॅथर—(**नट से**) अरे तुम बोलो न ! जोर से भाषण देना।

नट—(**आगे आकर स्वाभाविक भाषा में**) देख लिया सुन्दरराव मैं हार लेकर नही आया—

आॅथर—इसे क्या हो गया ?

नट—मै हार लेकर नही आया। क्यों ? मै भी एक कलाकार हूँ। मेरी कला की भी इसी प्रकार उपेक्षा हो रही है। मेरी कला को कला कहने के लिए भी कोई तैयार नही। किन्ही पराये नटों के अनुकरण से हम अभिनय में बनावटीपन लाये। वह बनावटीपन हमें महसूस हो रहा था...पर जब उसी बनावटीपन को संसार चाहने लगा तब उस बनावटी-पन को हम कला कहने लगे। पेट भरना था न हमें ! बीबी बच्चों के कबीले को भी अन्न देना था...इसी तरह कीर्ति के दाने पर संसार मे रहना था। इस गृहस्थी ने हमारा घात किया। पेट भरने के लिये हमे बनावटीपन का प्रपच रचना पड़ा।

आॅथर—बस-बस बन्द करो। किसने तुम्हें यह बेवकूफी सिखाई ?

नट—(**सुन्दरराव की ओर अंगुली दिखाकर**) इन्होने।

कवि—खटमल के साथ के कारण हीरा टूट गया !

आॅथर—सुन्दरराव, मुझे हृदय से आप पर गर्व हो रहा है—

सुन्दर—सब बनावट का बाजार है। दूसरों की बुद्धि से जीने वाले 'निर्बुद्धों के पुतलों...तुम्हारा यह सम्मान भी मेरा अपमान है।

निकल जाओ यहाँ से सब के सब । उस समय के तुम्हारे वे जूते और अब के ये हार, मेरे लिये दोनों बराबर है । मुझे तुम्हारी यह स्तुति भी नहीं चाहिए और निन्दा भी नही चाहिये । समझे ? चले जाइये यहाँ से... चले जाइये । **(एक-एक को धक्का मार कर बाहर निकालता है)**

नट—**(एक ओर बचा हुआ)** क्षमा कीजिए। मुझे जबर्दस्ती लाये ये लोग अपने साथ——

सुन्दर—**(उसकी पीठ ठोंक कर)** जाओ, बाबा, जाओ । जग पड़े हो तो उसे सार्थक करो । **(नट नमस्कार करके जाता है) (कृष्णा से)** और तुम भी जाओ जी इन हारों का बोझा लेकर । एक गधे का बोझा है यह । फेंक दो नाले में । या ऐसा करो कि पड़ौस में माली को आधी कीमत मे दे दो ये हार ।...तुम्हारा एक सप्ताह का खर्चा निकल आयेगा । **(कृष्णा हार लेकर जाता है)** ये लड़कियाँ कहाँ गईं ? **(तीनों उठ कर सामने आती हैं, सुन्दर जोर से हँसता है ।)** इतनी गड़बड़ होते हुए भी औरत जात चुपचाप बैठी रह सकती है, क्यों ?

रमणी—अब तुम्ही देख लो ।

सुन्दर—पतियों से डर गई ? अब वे चले गये— **(बलवन्तराव, बाबूराव प्रवेश करते है)**

वलवन्तराव—
बाबूराव— } नही इन्हें लिये बिना अब हम लोग नहीं जायेंगे ।

(दोनों जमीन पर बैठ जाते हैं)

सुन्दर—देखो रजनी, यहाँ तुमने भूल की, तुम्हे आर्टिस्ट बनना था तो तुम्हें स्वतन्त्र रहना चाहिये था । गिरस्ती का बोझा सिर पर लाद कर कला की उपासना नही होती । यह कला अब छोड़ दो । विवाह कर चुकी हो...कानून से बँध गई हो, अब तुम्हारे लिए दूसरा मार्ग नही है । बाबूराव इधर आइये । यह लीजिये अपनी पत्नी और यहाँ से जाइये दोनों । कह रहा हूँ न जाओ ! नहीं तो धक्के मारकर बाहर निकाल दूँगा दोनों को...।

(रजनी का हाथ पकड़ कर बाबूराव उसे खींचता हुआ ले जाता है)

रमणी—(**क्रोध से सुन्दर की ओर देखती हुई**) अब मेरे ऊपर नौबत न आये ! भाई कहलाता है भाई ! देख ली खून की ममता। हर कोई अपना स्वार्थ देखता है...और मै तो आर्टिस्ट नहीं। (**बलवन्तराव से**) सुना ? उठिये घर चलना है न ? (**बलवन्तराव उठकर उसकी ओर देखकर हॅसता है। दोनों हाथ में हाथ डाले हुए जाते हैं और जाते समय सुन्दर की ओर देखकर मुंह बनाते हैं। सुन्दर जोर-जोर से हँसने लगता है हॅसी उससे रोके नहीं रुकती।**)

कल्याणी—इतना हंसने के लिये क्या हुआ ? यही है वह मनुष्यता ? कितनी मनुष्यता की बढाई कर रहे थे आप ? —क्या मनुष्यता का अर्थ निर्दयता है ? क्या दया ममता कुछ भी नहीं है आपकी इस मनुष्यता में ?

सुन्दर- क्यो ? क्या हुआ ? उन्हे निकाल क्यों दिया ?

सुन्दर—सभी को निकाल दिया मैंने।

कल्याणी—उन्हे नही, रजनी और रमणी को।

सुन्दर—पर वे चली जो गई अभी !

कल्याणी —आपने उन्हें निकाला, जबर्दस्ती निकाल दिया—

सुन्दर—पर वे चली गई। बाबूराव बलवन्तराव की भाँति आसन जमाकर नही बैठीं। (**क्षण भर स्तब्धता**) बड़ी विकट है यह विवाह की फाँसी ! सारी कला का गला घुटता है इसके कारण। मेरी बात सुनो यह फाँसी न लगा लो। उपासना मे व्यभिचार के लिये स्थान नही। एक कला या फिर गिरस्ती ! एक साथ दोनों की उपासना करना शक्य नही। सब सबक ले लिये है मैंने और तय किया है...।

कल्याणी—क्या तय किया है ?

सुन्दर—कि अब जीवित रहूँगा तो एक कला के लिए।

कल्याणी—मेरे लिए ?

सुंदर—अपनी कला के लिए। जिस कला के कारण मेरी विडंबना हुई, जिस कला के कारण विडंबना से भी अधिक दुःसह मेरा सम्मान

हुआ, उस अपनी इकलौती कला के लिए...कला के व्यापक जीवन के लिये...एक व्यक्ति के लिए नही ! जाओ, कला, बेटा, जाओ। जितना सम्भव हो सके दूर रहो। ठीक क्षितिज की सीमा रेखा पर रहो। तुम्हारी प्राप्ति के लिए मै धीरे-धीरे कदम बढ़ाता उस सीमा तक पहुँचूँगा। अब जाओ।

(एकक्षण भर ही कला सुन्न होकर खड़ी रहती है और तत्पश्चात् जाने लगती है। वह धीरे-धीरे बाहर जाती है। क्षण भर उसके पीछे-पीछे जाने की वृत्ति सुंदर में दिखाई पड़ती है...पर दूसरे ही क्षण वह संयत होकर खड़ा रहता है।)

सुंदर—अकेला...अब मै अकेला...अपनी कला के लिये मै अकेला !

—: समाप्त :—